प्रकाशक—
बंगीय हिन्दी परिषद्
१५, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट,
कलकत्ता-१२

मुद्रक—
शशिभूषण पाडेय, बी० ए०
साहित्य प्रेस,
८४ सी, लोअर चितपुर रोड,
कलकत्ता-७

समर्पण—

जिनसे

जीवन के साथ ही

सब कुछ पाया

उन्हीं उदार चेता, परम पूज्य

पिताजी के चरणों मे

सादर—

परिचय



सन् १९२१ में जिस समय कानपुर के 'प्रताप' और उसके सर्वस्व स्व० गणेशशंकर जी विद्यार्थी पर मेरे ही जिले में मानहानि का मुकदमा चल रहा था और मेरा घर ही उन सम्मानित 'अभियुक्त', उनके सहयोगी तथा अन्य महान् कांग्रेस नेताओं का केन्द्र था उसी समय मुझे एक नहीं अनेक ऐसे अवसर मिलते रहे कि मैं अपने जीवन के प्रारम्भिक काल से ही देश के गिने-चुने उन महान राष्ट्र-सेवकों के निकट सम्पर्क में आ सका। 'नवीन' जी के नाम से परिचय भी उसी समय हुआ, किन्तु उनसे साक्षात् भेंट की घड़ी अभी कुछ दूर थी।

सन् १९२४ में, जब राष्ट्रीय आन्दोलन कुछ धीमा पड़ चुका था और नवयुवक राष्ट्रसेवकों के पास भी काव्य-चर्चा इत्यादि का कुछ थोड़ा सा अवसर था—इसी समय प्रयाग से एक कवि सम्मेलन में भाग लेने के लिये मुझे भी कानपुर जाना पड़ा था। वहीं प्रथम बार 'नवीन' जी से व्यक्तिगत परिचय हुआ। वह परिचय भी कुछ अनोखा था। उसे मधुर नहीं कहा जा सकता, क्योंकि हम दोनों स्वभाव से ही कुछ रूखे से थे। कह नहीं सकता, केवल अनुमान ही लगा सकता हूं कि उस प्रथम भेंट के बाद 'नवीन' जी को यदि मेरी कुछ भी याद रही होगी तो वह बहुत प्रिय न रही होगी। उनकी धारणा भी मेरे प्रति शायद बहुत अच्छी न रही हो, लेकिन सहसा उसी के बाद प्रयाग में जो 'नवीन' जी कांग्रेस की किसी बैठक में सम्मिलित होने के लिये आये थे और मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब मित्रवर श्रीमन्न शुक्ल के साथ मुझे तलाश करते हुए वे मुझसे मिलने 'लॉ हॉस्टल' (सर सुन्दरलाल छात्रावास, प्रयाग विश्वविद्यालय) के मेरे कमरे में दाखिल हुए। सच तो यह है कि मैं किसी भी परिस्थि-

सत्कार के लिये इस समय तैयार नहीं बैठा था। बदन उघाड़ा था, अपनी छोटी सी मेज़ के सामने बैठा हुआ जहाँ तक याद है माखन-लाल जीकी नव प्रकाशित एक कविता अपनी मस्ती में गा रहा था। कमरे में प्रवेश करते ही 'नवीन' जी सबसे पहले तो मेरे (उस समय के) पुष्ट शरीर की दाद देने लगे और यह कह कर कि "मैं तो अपने भुजदण्डों पर ही नाज करता था, तुम्हें देखकर जी चाहता है चूम लूँ"। थोडी देर के बाद काव्य-चर्चा छिड़ गयी। उन्होंने तथा श्रीरत्न जी ने कुछ अपनी नवीनतम रचनायें सुनाईं और 'नवीन' जी आग्रह करने लगे कि उनकी किसी रचना को मैं उन्हें गाकर सुनाऊँ। अतिथि थे—बात टलती भी कैसे ? उनकी इच्छा मुझे पूर्ण करनी ही पड़ी।

पहली भेंट की अन-अपेक्षित कटुता मैं भूला नहीं था, किन्तु इस समय वह मुझे सङ्कुचित करने लगी और मैंने चाहा कि थोडी सी कैफियत देकर क्षमा-याचना कर लूँ, किन्तु 'नवीन' की स्निग्ध दृष्टि का दृढ़ आदेश था कि वह चर्चा फिर न उठाई जाय। इसके बाद योद्धा 'नवीन', कवि 'नवीन', वक्ता 'नवीन', राष्ट्रभाषा का सेनानी 'नवीन', कानपुर का एकछत्र राजा 'नवीन' और भारतीय राज्य परिषद का परम सम्मानित सदस्य 'नवीन', न जाने कितनी बार और कितने मंचों पर मिलता ही रहा। प्रायः प्रत्येक भेंट के बाद अनुभव यही हुआ कि अपने सभी रूपों में 'नवीन' एक उदात्त मानवता का पुतला है। बाहर से वह लोगों को शायद कम कठोर नहीं लगता, किन्तु यदि हृदय तक कोई पहुँच जाय तो वहाँ उसे केवल नवनीत ही मिलेगा।

आलोचनात्मक अध्ययन मे भले ही तुलनात्मक दृष्टिकोण कभी-कभी आवश्यक हो जाय, किन्तु मानव का रसात्मक हृदय काव्य और संगीत से प्रेम केवल आलोचना के लिये ही नहीं करता—काव्य के रस का ग्रहण सहानुभूति, समवेदना और सराहना पर आधारित रहता है। यही सार्थकता है—उस सर्वमान्य सिद्धान्त की कि रस

ही काव्य की आत्मा है। काव्य के मर्म तक तभी पहुंचा जा सकता है—जब काव्य रसिक स्वयं 'रसव्यसनी' हो। माना कि मुक्ता की शोभा माला में गुथ कर भी खूब निखरती है, लेकिन मुक्ता का मूल्य और उसका सौन्दर्य माला से पृथक कुछ अपना अलग भी होता है। मुक्ता का पारखी उसके मूल्य को माला मे पिरो कर नहीं आंका करता वरन् उसके अपने 'पानी' को देख कर आंकता है। प्रत्येक सफल कवि की अपनी पृथक सत्ता होती है, उसका अपना व्यक्तित्व, उसकी कवितामें झलकता है। काव्य का रस उसके स्रष्टा के व्यक्तित्व का रस हुआ करता है—यदि यह सिद्धान्त ठीक है तो कहना ही पड़ेगा कि पिछले चार दशकों में राष्ट्र-वाणी के माध्यम से काव्यश्री के चरणों पर जितनी सुरभित पुष्पाञ्जलियाँ 'नवीन' ने चढ़ाई है वे अपने रूप, रस और गन्ध से अनुपम हैं। काव्य-प्रेमियो ने उनकी सराहना भी कम नहीं की है। हिन्दी के कवियो में 'नवीन' का अपना स्थान चिर-प्रतिष्ठित तो है ही, साथ ही चिरनवीन भी है। कवि के हृदय की सहज रससिक्तता ने केवल कवि को ही नहीं वरन् उसकी कविता को भी चिर नवीनता और चिर यौवन का वरदान सा दे डाला है। जो भी उनसे कभी मिला होगा, वह इस सत्य से इन्कार न कर सकेगा।

बहुत से लोगों को कहते सुना है कि 'नवीन' पर, आश्चर्य है—अभी तक आलोचनात्मक ग्रन्थ क्यो नहीं लिखे गये ? कहा नहीं जा सकता इस शिकायत मे लोगों की भावना क्या है—यह शिकायत हमारे आलोचकों की उदासीनता के प्रति है या कवि के सम्मान के प्रति शंका का संकेत है ? इन दोनों में से एक भी यदि है तो वह निराधार है। रस का विवेचन करते हुये सिद्ध आलोचक और और उसके परम आचार्य विश्वनाथ ने कहा है कि "रस अपने स्वभाव और धर्म से ही अज्ञाप्य होता है"। जैसा ऊपर निवेदन किया जा चुका है—'नवीन' की कविता आदि से अन्त तक रसीले हृदय की वाणी है और रस से ओत-प्रोत है। इसे पढ़ कर यदि

आलोचक भी एक क्षण के लिये अपनी नीर-क्षीर-विवेचिनी दृष्टि को खो बैठे और सराहना की भावना में तन्मय हो जाय तो आश्चर्य क्या ? लेखनी कैसे उठे ? रस की सिद्धि मूक सराहना है। हमारा आलोचक शायद् इसीलिये मौन है।

यह भी किसी से छिपा नहीं है कि आज की तथाकथित बहुतसी आलोचना सामग्री अपने शुद्ध नाम को विफल करती हुई कुछ 'प्रोपेगेंडा' के ही रूप में अधिक देखी जाती है। जो इस प्रकार के प्रचारात्मक "प्रोपेगेंडा" के रहस्य से परिचित है वे जानते हैं कि "प्रोपेगेंडा" किया नहीं जाता—कराया जाता है। 'नवीन' का व्यक्तित्व इससे बहुत ऊपर है।

"नवीन"-दर्शन नाम से यह नव प्रकाशन हिन्दी-संसार के सामने आज प्रस्तुत किया जा रहा है। इसके लेखक हैं आयुष्मान् केशवदेव उपाध्याय एम० ए०, जो सरस-हृदय पाठक ही नहीं स्वयं कवि है—कविता के रसिक है। "नवीन" की कृतियों पर यदि इनका अनुराग इस सीमा तक उमड़ा कि इनकी लेखनी भी मौन न रह सकी तो यह उचित ही था। प्रस्तुत अध्ययन मे पाठक स्वयं देखेंगे कि लेखक की सूझ बहुत गहरी है, दृष्टि पैनी है और लेखनी भी रस-प्रवाहिनी है।

"नवीन" जी का सम्बन्ध 'वंगीय हिन्दी परिषद्' के साथ प्रायः परिषद के जन्म से ही है। "परिषद" के द्वारा ही उसी के एक सम्मानित सदस्य की लेखनी से आज यह कृति भारती के कोष को अर्पित की जा रही है—यह और भी अधिक हर्ष का विषय है। आशा है हिन्दी संसार इस कृति का उसी भावना से स्वागत करेगा, जिससे इसकी रचना हुई है और उसका प्रकाशन किया जा रहा है।

कलकत्ता
कार्त्तिक शुक्ल एकादशी
सम्वत् २०१४ वि०

निवेदक :—
ललिता प्रसाद सुकुल

अपनी बात

हिन्दी की राष्ट्रीय कविता से बचपन से ही मेरा स्वाभाविक अनुराग रहा है। 'ज्यो ज्यों बूडे श्याम रंग, त्यों त्यों उज्ज्वल होय'—की भाँति ही ज्यों ज्यों इसकी गहराई मे उतरता गया, मेरे लिये कवि की उपर्युक्त उक्ति अधिक सत्य होती चली गई—क्योंकि 'नवीन' के काव्यसे परिचय मेरा ही क्या शायद सभी का, उनकी राष्ट्रीय कविताओ के द्वारा ही हुआ था—किन्तु अब तक की उनकी लेखनीने क्या क्या नहीं दे डाला—उन्मुक्त शृंगार से लेकर गम्भीर दार्शनिक तत्त्व तक उनके काव्य में अपनी अपनी सरसता लिये हुए निखरते ही चले गये हैं।

'नवीन' का कवि सर्वदा से मानवता के प्रति ईमानदार रहा है, भारत की चिर-प्रवह मान सांस्कृतिक परम्परा के प्रति ईमानदार रहा है तथा उसकी कुशल अन्तर्दृष्टि ने सदा से ही युग के सत्य को परखा है और यही कारण है कि उसके गीतों में मुझे प्रेम और जीवन के दिव्य रूप देखने को मिले। उसकी वाणी में अर्चना की तन्मयता है. उसका राग मानवता का राग है, उसके बोल वन्दना के बोलो की-सी पवित्रता लिये है, और इसीलिये मेरा मन अपनी 'अटपटी बोली' मे ही सही उसके प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित करने के लिये मचल उठा।

संकल्प के साथ ही, इसके निर्विघ्न पूरा होने की चिन्ता ने भी आ घेरा। किन्तु पूज्य गुरुवर आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल के आशीर्वाद से आज वही पूरा हो रहा है। उन्हीं के स्नेह के आलोक मे इस पुस्तक की पंक्ति-पंक्ति लिखी गई है। गुरु की इस महती कृपा के प्रति आभार प्रकट करूं भी तो कैसे? उनके वरदहस्त की छाया में आकर तो जैसे मन स्वयं ही कह उठा:—

'राढ़ खड़ काया निरमल नेत,
भई रे पूतां गुरु नों भेंट।'

पुस्तक जैसी भी है—आपके हाथो में है—कैसी है यह आप जानें। मुझे तो विद्वत् समाज के सम्मुख अपनी यह छोटी सी कृति रखते हुए न जाने क्यों शायर की वह पंक्ति बार बार याद आ जाती है :—

"अमीर इस बज्म मे, कहते हमें कुछ शर्म आती है।
हमीं नाक़िस हैं, औ क़ामिल यहाँ हर फ़न के बैठे हैं ॥"

अन्त में इतना तो निवेदन कर ही दूँ कि इसकी त्रुटियों को आप मेरी भूल समझ क्षमा कर दें, तथा इसमें जो कुछ आपको रुचे, उसे गुरुवर आचार्य सुकुल की कृपा-पूर्ण देन समझें।

कलकत्ता
कार्त्तिक शुक्ल एकादशी
सं० २०१४ वि०

निवेदक—
केशव देव उपाध्याय

युग और व्यक्तित्व

—ः:ः:ः—

आज से लगभग साठ वर्ष पूर्व एक ऐसा पुरुषार्थी व्यक्तित्व धरती पर उतरा जिसके दिल मे सरफरोशी की तमन्ना, हृदय मे प्रेम का तरंगायित समुद्र, आखो मे करुणा के संकेतमात्र से बरस पडने वाले मोतियो का कोष और ललाट पर पौरुष की प्रदीप्त आभा व्याप्त थी; जिसके सृजन के पंचतत्व क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर नहीं, अपितु मस्ती, जिन्दादिली निश्चिन्तता, निर्भयता सदाशयता और परोपकार थे।

बात सम्वत १९५४ [८ दिसम्बर १८९७ ई०] की है। मार्ग शीर्ष की पूर्णिमा के दिन मध्य भारत मे शुजालपुर के निकट स्याना गाव मे वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी पं० जमुनादास शर्मा के घर पुत्र जन्मा—बालकृष्ण। घर कहना कहा तक ठीक होगा जब कि पुत्र का जन्म पशुओ के बाडे मे हुआ था।

दैन्य का वातावरण, गरीबी का आलम और जीवन का कटु संघर्ष यही पंडित जमुनादास के पल्ले पडा था। नवजात शिशु के लिये दूध तक मुहाल था। मा का असहाय प्यार शक्ति बन हाथों मे उभर आता और घंटो चक्की पीस कर अर्जित पैसो से बालक के लिये दूध जुटता। मस्ती और अल्हडपन के इस सुघड चित्र पर अभाव एवं विवशता की कूची निरन्तर फिरने लगी।

जीवन क्रम परिचालित हुआ और समय की उंगली पकड डगमगाते पैरों 'बालकृष्ण' भी आयु के आठवें सोपान पर आ पहुंचे। अब तक पठन-पाठन की कोई उचित व्यवस्था नहीं

पुस्तक जैसी भी है—आपके हाथों में है—कैसी है यह आप जानें। मुझे तो विद्वत् समाज के सम्मुख अपनी यह छोटी सी कृति रखते हुए न जाने क्यों शायर की वह पंक्ति बार बार याद आ जाती है —

"अमीर इस बज्म में, कहते हमें कुछ शर्म आती है।
हमीं नाकिस हैं, औ कामिल यहाँ हर फ़न के बैठे हैं॥"

अन्त में इतना तो निवेदन कर ही दूँ कि इसकी त्रुटियों को आप मेरी भूल समझ क्षमा कर दें, तथा इसमें जो कुछ आपको रुचे, उसे गुरुवर आचार्य सुकुल की कृपा-पूर्ण देन समझें।

कलकत्ता
कार्त्तिक शुक्ल एकादशी
सं० २०१४ वि०

निवेदक—
केशव देव उपाध्याय

युग और व्यक्तित्व

—:○:—

आज से लगभग साठ वर्ष पूर्व एक ऐसा पुरुषार्थी व्यक्तित्व धरती पर उतरा, जिसके दिल मे सरफरोशी की तमन्ना, हृदय मे प्रेम का तरंगायित समुद्र, आखो मे करुणा के संकेतमात्र से बरस पडने वाले मोतियो का कोष और ललाट पर पौरुष की प्रदीप्त आभा व्याप्त थी, जिसके सृजन के पंचतत्व क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर नहीं, अपितु मस्ती, जिन्दादिली निश्चिन्तता, निर्भयता सदाशयता और परोपकार थे।

बात सम्वत् १९५४ [८ दिसम्बर १८९७ ई०] की है। मार्ग शीर्ष की पूर्णिमा के दिन मध्य भारत मे शुजालपुर के निकट स्याना गाव मे वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी पं० जमुनादास शर्मा के घर पुत्र जन्मा—बालकृष्ण। घर कहना कहा तक ठीक होगा जब कि पुत्र का जन्म पशुओ के बाड़े मे हुआ था।

दैन्य का वातावरण, गरीबी का आलम और जीवन का कटु संघर्ष यही पंडित जमुनादास के पल्ले पड़ा था। नवजात शिशु के लिये दूध तक मुहाल था। मा का असहाय प्यार शक्ति बन हाथो मे उभर आता और घंटो चक्की पीस कर अर्जित पैसो से बालक के लिये दूध जुटता। मस्ती और अल्हडपन के इस सुघड़ चित्र पर अभाव एवं विवशता की कूची निरन्तर फिरने लगी।

जीवन क्रम परिचालित हुआ और समय की उंगली पकड डगमगाते पैरों 'बालकृष्ण' भी आयु के आठवें सोपान पर आ पहुंचे। अब तक पठन-पाठन की कोई उचित व्यवस्था नहीं

पाई थी। पिताजी नाथ द्वारे में पौरोहित्य-कर्म करने चले गये। मा के साथ बालक बालकृष्ण भी वहीं गये और तीन, चार वर्ष तक रहे। इसके बाद शुजालपुर लौट आये और हिन्दी अंग्रेजी मिडिल की परिक्षा पास करने के पश्चात सन् १९१७ मे मैट्रिक की परीक्षा पास की।

इसके पहले ही सन् १९१६ मे एक ऐसी घटना घटी जो युवक बालकृष्ण के भविष्य एवं राष्ट्रीय जीवन का बीज रूप कही जानी चाहिये। अल्प आयु मे ही 'नवीन' जी समाचार पत्रों के प्रेमी हो चुके थे। और ये विशेषकर 'प्रताप, के नियमित पाठक बन चुके थे तथा स्वर्गीय गणेश शकर विद्यार्थी की ओजस्विनी लेखनी पर मुग्ध हो चुके थे। एक दिन अखबार मे तिलक जी के व्याख्यान का एक अंश प्रकाशित हुआ। जिसमे उन्होने लखनऊ काग्रेस मे सर्व साधारण का आह्वान किया था। युवक बालकृष्ण को यह निमन्त्रण बडा मोहक लगा एवं काग्रेस मे शरीक होने की लालसा तीव्र हो उठी।

डिसम्बर की ठिठुरन और भयंकर शीत 'नवीन' के उत्साह को कम न कर सके. घर के कोने मे बैठे हुये युवक नवीन की भावनायें "अपने सपनों के अदृश्य पखो से ऐसा रंग समेटने लगीं जिनसे खींची गई हर रेखा को भविष्य की आखे अन्तिम सांस तक पढ़ती रहें"। लखनऊ जाने की कल्पना साकार होने लगी 'रेत पर लिखने के प्रयास जैसा जिसे अभावो का हर अन्धड मिटाता जाता हो"। परन्तु पैरो ने चलना सीख लिया, राह सामने बन गई और नगे पर एक धोती, कंबल तथा लट्ठ लिये यह मुचंड विद्यार्थी चल पड़ा तिलक जी के आह्वान पर। रेल मे ही एक दुबले पतले पगडी धारी महाशय मिले, जो काग्रेस मे शरीक होने जा रहे थे। इस साधन हीन युवक की कार्यनिष्ठा एवं उत्साह से प्रभावित हुए बिना वे न रह सके। बात चीत के सिलसिले मे उन्हें सब कुछ ज्ञात हो गया और यह जान कर कि लखनऊ इस

व्यक्ति के लिये सर्वथा एक अपरिचित स्थान है. उन्होंने उसे अपने ही साथ ठहरने को भी कहा। लखनऊ पहुंच कर इन लोगों ने अमीनाबाद के एक होटल में रात बिताई। युवक को कुछ स्वभाविक उत्सुकता हुई और उसने अपने अज्ञात हितैषी का परिचय पूछा। "माखन लाल चतुर्वेदी, प्रभा कार्यालय, खंडवा" उत्तर मिला। बात उस समय की है जब 'एक भारतीय आत्मा' एक रहस्यपूर्ण संज्ञा बने हुए थे। माखनलालजी कवि के रूप में प्रसिद्ध नहीं हुए थे। युवक 'नवीन' इस नाम से परिचित था, एवं उसे यह भी पूर्ण रूप से ज्ञात था कि 'प्रभा' पर सम्पादक गंगराडे जी नाम छपता भर ही है, काम सब चतुर्वेदी जी ही करते हैं।

दूसरे दिन प्रातः काल चतुर्वेदीजी अपने एक मित्र से मिलने चले। आज्ञा पाकर बालकृष्ण भी उनके साथ हो लिये। मित्र के सम्बन्ध में पूछने पर उन्हे गणेश शंकर विद्यार्थी जैसा ओजस्वी नाम सुनने को मिला। अभिलषित सपनो को साकार होते देख बालकृष्ण का उल्लास तथा अज्ञात भावी जीवन का कार्य क्रम मानो स्वतः उनके सुदृढ़ चरणो में गति भरने लगा।

युवक के मन में विद्यार्थीजी की एक बडी ही विशाल कल्पना थी। सम्भवत वह समझता था कि विद्यार्थीजी अवश्य ही बड़े ऊंचे, मेघ गंभीर वाणी वाले, बलिष्ठ युवक होंगे। परन्तु जब एक चश्माधारी तेजस्वी मुख वाले दुबले पतले सज्जन को ही उसे विद्यार्थी-जी मानना पडा तो उसे थोड़ी निराशा भी हुई।

रेलवे स्टेशन के पास ही एक साधारण चायघर में गणेश शंकर विद्यार्थी, श्री मैथिली शरण गुप्त एवं पं० शिव नारायण मिश्र, चतुर्वेदीजी की प्रतीक्षा में थे। पहुंचते ही चतुर्वेदीजी विद्यार्थी जी के गले मिले और उन्होंने गुप्तजी के चरणो को श्रद्धा से छू लिया। गुप्तजी उन दिनो अति सामान्य डील डौल के व्यक्ति थे और एक पगिया उनके शिर पर सर्वदा विराजमान रहती थी।

चतुर्वेदीजी और 'नवीन' जी गणेश शंकरजी के अतिथि हुये। थोड़ी देर बाद माखनलालजी के साथ पं० बालकृष्ण शर्मा दूध पीने गये। वहा बातचीत के दौरान मे माखनलालजी ने कहा 'अच्छा हुआ गुरूजी के भी दर्शन यहीं हो गये'। इतना सुनते ही नवीनजी ने कहा, तो आप ही' 'एक भारतीय आत्मा' है। माखनलालजी अकस्मात चौंक पड़े और उन्होंने कहा 'यह तुम कैसे कह सकते हो'। इस पर 'नवीन' ने उन्हे 'एक भारतीय आत्मा' की उस कविता की याद दिलाई जिसमे उन्होंने गुप्तजी को अपना गुरू माना था। माखनलालजी उसी क्षण मूक हो गये।

दूसरे दिन दोनो सहयात्री गणेशजी यहा आ गये। परन्तु बेबस बालकृष्ण भोजन एव कांग्रेस के टिकट की चिन्ता से कातर हुए जा रहे थे। भोजन की समस्या तो गौड थी, परन्तु सर्वाधिक चिन्ता थी टिकट की। दर्शकों का टिकट आकाश कुसुम होने लगा। स्वागत समिति के कार्यालयों की 'खाक छानी' स्वयं सेवक बनने की इच्छा प्रकट की, परन्तु चारो ओर से निराशा ही मिली। प्रबल आकाक्षा के सामने वह निराशा टिक न सकी। गणेशजी के पूछने पर कि-'टिकट मिला कि नहीं' बड़ी निर्भीकता के साथ उत्तर दिया "वैसे तो मेरे पास पैसे ही नहीं, परन्तु यदि हो भी तो दस के टिकट पचास मे मिल रहें हैं"।

किसी प्रकार गणेशजी ने एक टिकट का प्रबन्ध कर दिया। युवक के मन मे तिलक के प्रति बड़ी श्रद्धा थी और जब जुलूस मे तिलकजी की गाडी मे मानव जुत गये तो बालकृष्ण भी उससे अपने को अलग न रख सके। तिलक की तेजस्वी एवं ओज भरी वाणी ने युवक पर इतना प्रभाव डाला कि उनके संकेत मात्र से आत्म बलिदान करने की भावना उसके रोम रोम से फूट पडी।

बालकृष्ण शर्मा मे जिज्ञासा एवं चिन्तन-शीलता के अंकुर किशोरावस्था से ही फूटने लगे थे। लखनऊ से लौटते समय युवक बालकृष्ण ने विद्यार्थीजी से बडी देर तक बात की। 'भावना और

शक्ति के नाना रूप तथा उनके द्वारा संचालित कर्म' यही विषय था। यह वार्त्तालाप घंटो चलता रहा। युवक ने कई बार गणेशजी के मत का खंडन भी किया, परन्तु किसी हद तक वह गणेशजी के तेजस्वी व्यक्तित्व एवं उनकी योग्यता से अत्यधिक प्रभावित हो चुका था।

गाड़ी का समय हो गया था। गणेशजी ने जब बिस्तर गोल करने को कहा तो 'नवीन' जी हंस पड़े और बोले बिस्तर क्या बाधना। 'ले लुगरिया चल डगरिया-धोती कंबल कंधे पर, लाठी लाटा हाथ मे'। इतना कह कर युवक ने स्टेशन की राह ली। गणेश जी के व्यथित नेत्रों मे आसू छलछला आये। उनके स्पन्दित हृदय से एक आह निकली और वे चीख पडे 'अरे बताया भी नहीं और इसी एक कम्बल पर सारी रात ठिठुरते रहे।'

मन ही मन बालकृष्ण पूर्ण रूपेण गणेश जी को अपना जीवन समर्पित कर चुके थे।

काग्रेस से घर लौट कर युवक ने मैट्रिक की परीक्षा दी थी। दिन बीते और एक वेदना भरे सन्देश ने लेखनी का आश्रय लेने को बाध्य कर दिया। 'नवीन'की पहली रचना एक कहानी थी। शीर्षक था 'संतू'। इस नाम का एक व्यक्ति 'नवीन' का मित्र था, जो उनसे सैकड़ों मील दूर अपनी जीवन लीला समाप्त कर चुका था। यह कहानी उसी की स्मृति बन कर लेखनी से स्वतः फूट पडी और उपनामो के नये विश्व मे 'नवीन' भी नव जीवन लेकर आये।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी उन दिनों सरस्वती के सम्पादक थे और श्री हरिभाऊ उपाध्याय उनके सहकारी। कहानी प्रकाशनार्थ नवीनजी ने द्विवेदीजी के पास भेजी। कहानी पढ कर द्विवेदी जी ने उपाध्याय जी से कहा—'इन्हे पत्र लिख कर पूछो कि किस बंगला कहानी का यह अनुवाद किया गया है, उत्तर में 'नवीन' जी ने लिखा "मै तो बंगला जानता ही नहीं और यह कहानी मेरी

अपनी लिखी हुई है अनुवाद नहीं।" इसके उत्तर मे द्विवेदी जी ने स्वयं एक कार्ड लिख कर नवीन के पास भेजा। लिखा था—"महोदय, कहानी मिली—छापूगा म० प्र० द्विवेदी।" सन् १६१७ के दिसम्बर या १८ की जनवरी की सरस्वती मे यह कहानी प्रकाशित हुई है।

परीक्षाफल आया और नवीन की सफलता का सन्देश दे गया। एक दिन माता पिता से यह कह कर कि ग्वालियर 'पढने जा रहा हूँ'—इन्होंने कानपुर का टिकट लिया और चल पडे जीवन के ऊबड खाबड मार्ग पर।

कानपुर रेलवे स्टेशन से ये सीधे 'प्रताप' कार्यालय पहुचे वहा देखा गणेशजी को एक लम्बी मेज के एक सिरे पर बैठे, चार पाच व्यक्तियों के साथ कुछ विचार मग्न से लिखते-पढते। एक टिमटिमाती हुई रोशनी कमरे की धुधलाहट को दूर करने का असफल प्रयास कर रही थी। नवीनजी ने गणेशजी को प्रणाम किया और उत्तर मे एक उपेक्षा पूर्ण 'बैठिये' सुन कर कुछ स्तब्ध और अनमने से हो धीरे से बैठ गये। नवीन को जैसे काठ मार गया। जिसे जीवन का सर्वस्व समझा और जिसके एक मात्र आकर्षण से इस कंटकाकीर्ण और अनजान डगर पर इतनी दूर चल कर आये उसका यह व्यवहार। सहसा इस पर विश्वास नहीं हुआ।

रहू या लौट जाऊं इसी उधेड बुन मे नवीन पड़े हुए थे कि गणेश जी उधर से गुजरे और आश्चर्य की मुद्रा मे प्रसन्नता पूर्वक बोल उठे 'अरे। बालकृष्ण तुम हो' और गले लगा लिया। अभी कुछ क्षण पहले जिस हृदय को खिन्नता और निराशा मथे डाल रही थी, वह आह्लाद से भर उठा। बात यह हुई कि कार्य की व्यस्तता से एवं, शार्ट साइटड' होने के कारण गणेशजी उन्हे पहचान नहीं सके थे। गणेशजी की सहायता से नवीन के लिये बीस रुपये मासिक के कुछ 'ट्यूशनो' की व्यवस्था हो गई और अध्ययन की गाडी

अध्यापन के सहारे आगे बढ़ चली। कानपुर के क्राइस्टचर्च कालेज मे नवीन का दाखिला हो गया।

कालेज जीवन सुखी था। शारीरिक व्यायाम के नवीन आदी थे और डंड पेलने मे सिद्ध हस्त। आनन्द से पढ़ना मौज करना और छात्रावास मे रहना, यही नित्य प्रति का कार्य व्यापार था। खेल कूद से विशेष लगाव नहीं था। कालेज के 'इन्डियन डिफेंस फोर्स' मे भर्ती होकर सैनिक शिक्षा अवश्य ले ली थी।

अब तक नवीनजी दो चार कहानियो के लेखक हो चुके थे। जीवन के एक एक दिन साहित्यिक भावनाओ एवं मधुर क्रिया-कलापो से ओत-प्रोत बीतते चले जा रहे थे कि एक दिन नवीन का कवि अचानक विजया की तरंग मे गुनगुना उठा। कविता लिखी गई 'जीव ईश्वर वार्तालाप' पर। इस कविता का सम्मान भी हुआ। मुरादाबाद से पं० ज्वालादत्त शर्मा के सम्पादकत्व मे निकलने वाली पत्रिका 'प्रतिभा' के मुख पृष्ठ पर इसको स्थान मिला। अब नवीन जी ने प्रताप मे भी लिखना प्रारम्भ कर दिया। इसी बीच बाबू मैथिली शरण गुप्त, पं० बद्रीनाथ भट्ट, श्री वृन्दावन लाल वर्मा और कौशिकजी के सम्पर्क मे आये।

लिखने लिखाने का क्रम व्यवस्थित हो ही रहा था कि गाधीजी का सत्याग्रह उग्र हो उठा और युक्त प्रान्त के सत्याग्रहियो के पहले जत्थे में श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन का नाम मौजूद था।

सत्याग्रह की इस भावना की पीठिका कोरी भावुकता नहीं थी। नवीन उन दिनों बी० ए० फाइनल के विद्यार्थी थे। इनके दो अन्तरंग मित्र थे, पं० द्वारिका प्रसाद मिश्र और पं० उमा शंकर दीक्षित। इन तीनो ने लगातार एक सप्ताह तक पूर्ण विचार विनि-मय एवं तर्क वितर्क के पश्चात् आन्दोलन मे भाग लेने का निश्चय किया था। इससे भी अधिक प्रधानता उस आह्वानको दी गई जिसके शब्द, शब्द से स्वतन्त्रता की शंख ध्वनि निस्त्रित हो रही थी। महात्मा

गाधी की आत्मा मे जर्जर भारत का तरुण हुकार गरज उठा था। यदि इस स्वतन्त्रता की वेदी पर त्याग और तपस्या के पुष्प न चढाये जाते तो यह कसक जीवन पर्यन्त हृदय को मर्माहत करती रहती।

सन् १९२१ का समय, दिसम्बर के सिकुडे हुये दिन, देश में भयंकर असन्तोष और नवीनजी सीखचों के पीछे। जेल जीवन की विभीषिकाओ का किसी भी रूप मे पुनरावर्त्तन क्यों किया जाय। यह नवीनजी को प्रिय भी नहीं। इस सम्बन्ध में उनसे पूछने पर वे एक ही वात कहते हैं "म्या, लाखों ने क्या क्या नहीं भोगा हम भी उन्हीं मे एक थे। उन वातो का क्या तज़किरा।" यह नवीन जी की पहली जेल यात्रा थी। लखनऊ मे आज के अनेक प्रसिद्ध नेताओं के साथ नवीन बन्दी थे। इस वन्दी गृह के एक प्रकोष्ठ विशेष मे सात गंभीर कैदी रक्खे गये थे। ये थे टंडन जी, पं० नेहरू, स्व० श्री जोसेफ, महादेव देसाई, देवदास गाधी, परमात्मानन्द सिंह और पं० वालकृष्ण शर्मा नवीन। यहीं नवीन ने 'उर्मिला' नामक महाकाव्य लिखना प्रारम्भ किया। स्फुट कविताओं के लिखने का क्रम भी वन्द नहीं हुआ था।

डेढ़ वर्ष के इस कारावास दंड के पश्चात् तो फिर लीला पुरुषोत्तम की यह जन्म भूमि नवीन के लिये तीर्थ स्थान ही हो गई, जिसका वे वरावर दर्शन करते रहे। वह समय था जव नवीन की ओजस्वी वाणी विद्रोह और युग परिवर्तन के लिये देशवासियों को ललकार रही थी।

यथा :

कवि कुछ ऐसी तान सुना दे,
जिससे उथल पुथल मच जाये,
एक हिलोर इधर से आये,
एक हिलोर उधर से आये,

प्राणों के लाले पड़ जायें,
त्राहि त्राहि रव नभ में छाये।
नाश और सत्यानाशो का,
धुँआ धार जग में छा जाये।
वरसे आग, जलद जल जायें,
भस्मसात भूधर हो जायें।
पुण्य, पाप, सदुसद् भावो की,
धूल उड़ उठे दायें वायें।
नभ का वक्षस्थल फट जाये,
तारे टूक टूक हो जायें।
कवि कुछ ऐसी तान सुना दे,
जिससे उथल पुथल मच जाये।

जेल के वाहर नवीन ने अधिक नहीं लिखा। उनकी अधिकाश कवितायें कारागार के शून्य कक्ष में ही लिखी गई थीं।

'उर्मिला' महाकाव्य का श्री गणेश सन् १९२२ मे जेल में ही हुआ। और फिर एक सर्ग के पश्चात् उसका लिखना कुछ काल के लिये स्थगित रहा। सन् १९२३-२४ की जेल यात्रा मे पुनः उन्होने उसे पूरा किया।

जेल के वाहर नवीन ने जो कुछ लिखा वह विशेपतया 'प्रताप' के लिये लिखा। 'शिमला सम्मेलन मे निराशा का अवतरण', 'मुसलमान भाइयों की खिदमत में', 'तुम्हारे उपवास की यह चिन्ता' इत्यादि सैकडो अग्रलेख प्रताप की फाइलो मे सुरक्षित नवीन की ओजपूर्ण निवन्ध शैली के उदाहरण हैं। प्रताप मे लिखते रहने के साथ ही 'प्रभा' का सम्पादन भी नवीनजीने किया। प्रभा का 'झंडा-अंक' पत्रकारिता के जगत में एक हलचल की ओर संकेत करता

गाधी की आत्मा में जर्जर भारत का तरुण हुंकार गरज उठा था। यदि इस स्वतन्त्रता की वेदी पर त्याग और तपस्या के पुष्प न चढाये जाते तो यह कसक जीवन पर्यन्त हृदय को मर्माहत करती रहती।

सन् १९२१ का समय, डिसम्बर के सिकुडे हुये दिन, देश मे भयंकर असन्तोप और नवीनजी सीखचों के पीछे। जेल जीवन की विभीपिकाओं का किसी भी रूप मे पुनरावर्त्तन क्यों किया जाय। यह नवीनजी को प्रिय भी नहीं। इस सम्बन्ध में उनसे पूछने पर वे एक ही बात कहते हैं "म्या, लाखों ने क्या क्या नहीं भोगा हम भी उन्हीं मे एक थे। उन बातों का क्या तज़किरा।" यह नवीन जी की पहली जेल यात्रा थी। लखनऊ में आज के अनेक प्रसिद्ध नेताओं के साथ नवीन बन्दी थे। इस बन्दी गृह के एक प्रकोष्ठ विशेप में सात गंभीर कैदी रक्खे गये थे। ये थे टंडन जी, पं० नेहरू, स्व० श्री जोसेफ, महादेव देसाई, देवदास गांधी, परमात्मानन्द सिंह और पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन। यहीं नवीन ने 'उर्मिला' नामक महाकाव्य लिखना प्रारम्भ किया। स्फुट कविताओं के लिखने का क्रम भी बन्द नहीं हुआ था।

डेढ़ वर्ष के इस कारावास दंड के पश्चात तो फिर लीला पुरुपोत्तम की यह जन्म भूमि नवीन के लिये तीर्थ स्थान ही हो गई, जिसका वे बराबर दर्शन करते रहे। वह समय था जब नवीन की ओजस्वी वाणी विद्रोह और युग परिवर्तन के लिये देशवासियों को ललकार रही थी।

यथा :

कवि कुछ ऐसी तान सुना दे,
जिससे उथल पुथल मच जाये,
एक हिलोर इधर से आये,
एक हिलोर उधर से आये,

प्राणों के लाले पड़ जायें,
त्राहि त्राहि रव नभ में छाये।
नाश और सत्यानाशो का,
धुँवा धार जग मे छा जाये।
बरसे आग, जलद जल जायें,
भस्मसात भूधर हो जायें।
पुण्य, पाप, सद्सद् भावो की,
धूल उड़ उठे दायें बायें।
नभ का वक्षस्थल फट जाये,
तारे टूक टूक हो जायें।
कवि कुछ ऐसी तान सुना दे,
जिससे उथल पुथल मच जाये।

जेल के बाहर नवीन ने अधिक नहीं लिखा। उनकी अधिकाश कवितायें कारागार के शून्य कक्ष मे ही लिखी गई थीं।

'उर्मिला' महाकाव्य का श्री गणेश सन् १९२२ मे जेल में ही हुआ। और फिर एक सर्ग के पश्चात् उसका लिखना कुछ काल के लिये स्थगित रहा। सन् १९२३-२४ की जेल यात्रा मे पुनः उन्होंने उसे पूरा किया।

जेल के बाहर नवीन ने जो कुछ लिखा वह विशेषतया 'प्रताप' के लिये लिखा। 'शिमला सम्मेलन में निराशा का अवतरण', 'मुसलमान भाइयों की खिदमत में', 'तुम्हारे उपवास की यह चिन्ता' इत्यादि सैकड़ों अग्रलेख प्रताप की फाइलो मे सुरक्षित नवीन की ओजपूर्ण निबन्ध शैली के उदाहरण है। प्रताप मे लिखते रहने के साथ ही 'प्रभा' का सम्पादन भी नवीनजीने किया। प्रभा का 'झंडा-अंक' पत्रकारिता के जगत में एक हलचल की ओर संकेत करता

है। एक पत्रकार के रूप मे विशेषत. अग्रलेख लेखन का कार्य ही नवीनजी ने किया है और इस दशा में उन्हें वह सफलता मिली है जिसे हम 'न भूतो न भविष्यति' कह कर भी नहीं अघाते। प्रताप मे प्रकाशित नवीन के अग्रलेख सर्वाधिक उद्धृत किये गये और आज भी समय समय पर किये जाते हैं।

सन् १९२१ मे राय बरेली जिले के मुशी गंज, फुरसत गंज, और करैया बाजार मे गोली चली। सरकारी प्रतिबन्धों के कारण सही समाचारों का मिलना असम्भव हो रहा था। नवीनजी ने स्वयं जाकर घटनाओ का आंखो देखा वर्णन प्राप्त किया, और प्रताप मे क्रमशः तीन अग्रलेख लिखे। ये अग्रलेख नहीं, आग के शोले थे। करनी का फल तत्काल मिला और पच्चीस पच्चीस हजार के मुचलके मागे गये। यहा यह उल्लेखनीय है कि उक्त गोलीकाण्ड का सम्बन्ध रायबरेली के एक सिक्ख ताल्लुकेदार से भी था। नवीनजी ने अपने अग्रलेखो मे उसको इस निन्दनीय कार्य के लिये धिक्कारा था। फलतः उसकी ओर से बृटिश सरकार के संकेत एवं पूर्ण सहायता के आश्वासन पर मानहानि का दावा हुआ। और परिणाम स्वरूप गणेश शंकर जी को जेल-यात्रा करनी पडी। वस्तुतः इसी घटना से गांधीजी के सत्याग्रह आन्दोलन का सूत्रपात हुआ।

विद्यार्थीजी के मुकद्दमे की सुनवाई प्रारम्भ हुई। उन्नाव के प्रसिद्ध वकील पंडित विश्वम्भर नाथ बाजपेयी ने बडे मनोयोग से मुकद्दमे के सारे कागजात ठीक किये। देश के अनेक महान नेताओ का इस मुकद्दमे से अनायास सम्बन्ध हो गया। यहाँ तक कि स्व० पं० मोतीलाल नेहरू एवं महामना पं० मदनमोहन मालवीय को भी विद्यार्थीजी की ओर से साक्षी-स्वरूप अदालत मे उपस्थित होना पड़ा।

नवीन के उपर्युक्त अग्रलेख ही गणेश शंकरजी की प्रथम जेल-यात्रा के कारण हुए। यह तो सर्व विदित तथ्य है कि नवीन की अग्रलेखनी ने ही इन लेखो को जन्म दिया था। किन्तु 'प्रताप' के

स्वाभिमानी सम्पादक विद्यार्थीजी ने नवीन के हठ पर भी उन्हे जेल न जाने दिया; जब कि देश के अनेक मान्य नेताओ का भी यही आग्रह था कि विद्यार्थीजी बाहर रह कर ही सेवा करे।

यह घटना इन दोनों महान व्यक्तित्वो के पारस्परिक सम्बन्ध की यथेष्ट सूचना देती है और साथ ही उस काल के राष्ट्र के कर्णधारो के हृदय मे 'प्रताप' तथा श्री गणेश शंकरजी के प्रति कितनी ममता एवं श्रद्धा थी इसका भी परिचय इससे मिल जाता है।

विशुद्ध साहित्यिक क्षेत्र मे नवीन कभी सत्यवादिता से दूर नहीं रहे। खडी बोली मे रची जाने वाली कविताओ की शैली, भाव-भाषा, अभिव्यंजना आदि पर कटाक्ष करते हुए आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सत्य विकास' शीर्षक एक लेख लिखा। यद्यपि उस लेख मे नवीन की कविता 'चलो वीर पटुआ खाली' की प्रशंसा की गई थी; तथापि अन्य अनेक भ्रमात्मक धारणाओ के निराकरण के लिये नवीन ने प्रताप मे उसके उत्तर मे लिखा। बड़े आदर भाव से द्विवेदीजी को साहित्यिक कृतियो एवं अभिरुचियोका उन्नायक मानते हुए उनसे पूछा गया था :

'बिछाया अपना सिंहासन,
सुहावन दूर क्यो इतना।
लपट से डरते हो इससे,
यह लौ सी जो उठी है कुछ।

कुछ दिनो बाद एक बार द्विवेदीजी प्रताप कार्यालय आये और बैठते ही नवीनजी से पूछा—"काहे हो बालकृष्ण तनिक एक बात हमका बताओ। तुम्हार ई सजनी रानी प्रिये को आय।' नवीन ने फौरन जवाब दिया 'अब तुम वृद्ध हाय गएओ, का करिहो, इनका मरम जानि के।' ठहाका लगाते हुये द्विवेदीजी ने नवीनजी को एक घूसा लगाया और बोले—'बड़े मुग्हा हो।'

जेल जीवन की एक मनोरंजक चर्चा है। जिसमे नवीन का फक्कड व्यक्तित्व झांकता है। जेल के छोटे शौचलयों में लापरवाह मनचले बन्दी नौजवान प्रायः खड़े खड़े लघुशंका समाधान किया करते थे। फलस्वरूप दीवारें ऊपर से नीचे तक मूत्राभिसिंचित हो जाया करती थीं। इसको बन्द करने के लिये बड़े बूढ़े नेताओ ने साम, दाम, दण्ड-भेद सभी नीतियो का आश्रय लिया और अस-फल रहे। अन्त मे नवीन की बीस पंक्तियों की एक कविता इस महारोग की महौपधि सिद्ध हुई। जिसकी कुछ पंक्तिया इस प्रकार है .

ओ। तुम मेरे प्यारे जवान
ओ। तुम मेरे गौरव प्रमाण
पाखानों मे हो कर के खडे,
तुर्री मत मारो नौजवान।
दीवारें गीली होती है,
छिट जाते है सब पायदान। इत्यादि।

वडे वडे अक्षरों मे इसकी प्रतिलिपियां उचित स्थानो पर चिपका दी गई। सुवह हुई और दीवानों की उस टोली ने जब कविता पढी तो उनके समवेत गान और अट्टहास से जेल गूज उठा। और उन्होने वैठ कर शंका समाधान करने का नियम सा वना लिया।

सन् १९१५ मे जव नवीनजी सोलह साल के थे तो उनका विवाह हुआ था। किन्तु गौना भी नहीं हो पाया था कि प्लेग की महामारी नवीनजी की पत्नी को मैके ही मे खा गई। वस्तुत सन् १९४६ तक नवीनजी अविवाहित ही रहे। यह पूछने पर कि आपने इतने दिनो तक विवाह क्यो नहीं किया नवीनजी कहते है—"हमारे जैसे कंगाल से कौन अपनी वेटी व्याहता।" यह तो हुई विनोद की वात। वस्तुत वह संक्रमण काल था। देश विपन्न था और ऐसी स्थिति मे मातृ-भूमि का यह वलिदानी सैनिक अपने

विरस जीवन मे सम्भवतः वसन्तागम की कल्पना भी न कर पाता था।

समाज सहजगति का अनुयायी होता है। भले ही समाज के कतिपय पुराण पंथियो को अपनी कन्याओ की मंगल-योजना की सिद्धि की झलक इस फक्कड वर में न मिली हो किन्तु कौन कह सकता है नवीन का ऊर्जस्वित व्यक्तित्व, जिसके रोम रोम से युग-चेतना का दिव्य आलोक फूट रहा था—अनेक आर्य ललनाओ के वरण का लक्ष्य न रहा हो ?

नवीन का जीवन उस दीप-स्तम्भ की भाति रहा है जो समुद्र की क्रूर लहरो के बीच, ज्वार भाटा के भयंकर अट्टहास मे भी अविचल खड़ा मार्ग दर्शन का हेतु बना रहता है। संसार मे अव-रोधो को रौंदते हुए जीवन पथ पर आगे बढ़ना ही नवीन का आदर्श रहा है। कवि ने विपत्तियों का साहस के साथ सामना किया किन्तु मुख पर खिन्नता कभी न आने पाई। वही अलमस्त जीवन, और सदा वही अल्हड़पन जो नवीन के जीवन की थाती है। दुःखो की भयानक विभीषिकायें मुंह बाये खड़ी रहीं परन्तु नवीन के मधुर व्यक्तित्व पर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे एक दृढ़, समु-न्नत चट्टान की भाति सदा अडिग बने रहे। जीवन-सागर में अभावो की ऊर्मियां आतीं और टकरा टकरा कर स्वयं क्षत विक्षत हो जातीं। क्या विपत्तियो को झेलने की साहस पूर्ण भावना पला-यनवादी मनोवृत्ति की द्योतक है ? इन पंक्तियो का लेखक व्यक्तिगत रूप से नवीन को पलायनवादी नहीं मानता। जो व्यक्ति जीवन के दुर्दमनीय क्षणों में भी मुस्कराता और प्रतिक्षण संघर्षों का आह्वान करता है, उस पर यदि पलायनवादी होने का लाछन लगाया जाय तो शायद पलायनवाद के अर्थ पर ही फिर से विचार करने की आवश्यकता होगी।

नवीन का जीवन-दर्शन बड़ा ही सुगम है। ईर्ष्या. द्वेष की भावना जिसे छू तक न गई हो, जिसके हृदय मे घृणा का लेश मात्र

न हो एवं जो सर्वदा परसेवा और साहाय्य की भावना से भरा हो उसके विचारों की एक रूपता और भावनाओं की बोध गम्यता बडी ही स्पष्ट समझी जानी चाहिये। उनका जीवन साधनायुक्त एवं गतिमान रहा है। स्वभाव में आलस्य की प्रचुरता रहते हुए भी समय समय पर कर्त्तव्य की पुकार जब भी हुई तभी चेतनता एवं कर्मठता ने अपना चमत्कार दिखलाया।

लोक सभा की सदस्यता के कारण दिल्ली प्रवास एवं वहा के वर्त्तमान जीवन से नवीन के हृदय मे असन्तोष है।

'मेम्बरी के वजीफे से दिन काटने' में उन्हें मजा नहीं आता। ऐसा वे बारम्बार कहते है। यहाँ हमे नवीन की इस उक्ति पर गम्भीरता पूर्वक विचार करना होगा। व्यक्ति के दो मूल रूप होते हैं—एक तो उसका अन्तरंग और दूसरा उसका वहिरंग। अन्तरंग ही वस्तुत: व्यक्ति का सच्चा रूप है क्योकि व्यक्ति की आभ्यातरिक चेतना का ही पूर्ण विकास उसके व्यक्तित्व की पूर्णता को चरितार्थ करता है और तभी उसके स्वरूप-विधान मे सौन्दर्य का उदय होता है। यदि अन्तरंग और वहिरंग मे किसी प्रकार का द्वन्द्व है तो जीवन की सहज गति मे अवरोध सा आ जाता है।

नवीन का लौह व्यक्तित्व जिसमे जीवन की ऊर्जा का विकराल रूप हम देख चुके हैं, उनके अन्तर्मथन को शायद व्यक्त होने का अवसर नहीं देता। वास्तव मे जब हम उनके व्यक्तित्व के आभ्यान्तरिक एवं वाह्य स्वरूपों का विश्लेषण करते है तो हमे सहज ही यह प्रतीत होने लगता है कि जीवन की कोमलतम अनुभूतियों को हृदय के अत्यन्त सुरक्षित कक्ष मे संजोये यह मनीषी देश और काल की नाड़ी को परख उसके अनुरूप अपने सीने पर पत्थर रख लेने की भी क्षमता रखता है।

भारतीय-स्वातन्त्र्य-समर का युग, सचमुच देशवासियो के लिये अग्नि परीक्षा का युग था। उस समय मलिन, वन्दिनी भारत

जननी की कातर पुकार पर उसके लाड़ले सपूत के नाते नवीन ने आत्म बलिदान का मन्त्र ले उस महायज्ञ में अपने आपको होम कर देने का संकल्प सा कर लिया तथा उस पवित्र संकल्प की मंत्रशक्ति ने उसकी आत्मा को पूर्ण सबल भी बनाया। तभी तो अगणित बलिदानो मे भी नवीन के व्यक्तित्व का आलोक अलौकिक आभा लिये सर्वदा दिव्य रूप में चमकता रहा। किन्तु आज उस कालकुहाका अन्त हो चुका है। आज देश स्वतन्त्र है। युद्ध के बाद जैसे सैनिक विश्राम का आकाक्षी हो जाता है, जैसे उसकी नस नस मे आलस्य सा भर जाता है—आज वही दशा नवीन की है। किन्तु नवीन के इस आलस्य में शैथिल्य नही, क्षीणता नहीं वरन् है एक नैराश्य मूलक भावना। वस्तुत· स्वतन्त्रता का दिव्य रूप तो हमे आज भी प्राप्त नहीं। हमे तो उसका कंकाल ही मिला है और इसीलिये कवि नवीन की शिथिल चेतना आज भी, अनेक विरोधी तत्त्वो के होते हुए भी, उस कंकाल मे प्राण भर, उसकी आत्मा एवं उसके कलेवर को शुचितर तथा श्री सम्पन्न बनाने की मंगल योजना मे सन्नद्ध है। स्वतन्त्रता को समृद्ध बनाने का आकाक्षी नवीन आज 'मजा न पाकर' भी अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति मे सतत जागरूक है। सम्भवत· 'यह मजा न पाना'—किसी विकराल प्रभंजन की पीठिका हो और नवीन का कवि किसी ऐसे सुयोग का साँचा तैयार कर रहा हो जिसमे ढलकर 'स्वतन्त्रता' को नया रूप मिल सके—वह दिव्य रूप मिले जिसके हम चिर अभिलाषी है।

उपर्युक्त जानकारियो के क्षणों मे हमे एक सहज भावुक, सरस व्यक्तित्व और उसके सार्वजनिक जीवन के नितान्त विरोधी तत्त्वा के घोर अन्तर्द्वन्द्व के दर्शन होते है। अपनी सहज उमंग मे प्रेम पारावार के पार जाने के लिये लहरो से अठखेलियाँ करने वाले मस्त सैलानी किन्तु जीवन के चिर गंभीर रहस्यो मे डूबे हुए नवीन का

ोखली, सत्ताविलासिनी राजनीति के मरुस्थल की सूनी गलियों से
ाता भी क्या हो सकता है ?

संसार ने नवीन को असफल दुनियादार कहा । नवीन ने बजाय इसके कि, क्रुद्ध जाते—इस निर्णय पर व्यंग्य भरी मुसकान के साथ कह डाला :—

जग हमें निठल्ला कहता है,
कुछ हैं हम भी सालस प्राणी ।
कुछ रोने में कुछ गाने में,
कट गई जिन्दगी मस्तानी ।
जब 'नयी सफलता' के गज से,
हम निकले असफल लासानी ।
जग मार ठहाका खूब हंसा,
हम भी मुस्काये मस्ताने ॥
जग व्यथा हमारी क्या जाने ॥

इन शब्दों में जीवन की कहानी छिपी हुई है जो उर्मिल है, जिसमे मस्ती है और जहा मस्तानेपन की उस छटा को निरन्त बिखरने वाले, एक असाधारण व्यक्तित्व की झलक है। पर साधारण होते हुए भी नवीन महान असाधारण है ।

राष्ट्रीय-स्वर

राष्ट्र की परिभाषा दुर्लभ है। 'एक पूर्वज की सन्तान जिसकी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परम्परा एक हो, जो एक विशिष्ट भूखंड मे निवास करती हो, एवं जो सुशासन की कायल हो, राष्ट्र के अन्तर्गत आती है।' इस प्रकार की व्याख्या अंग्रेजी के आक्सफोर्ड शब्दकोष में राष्ट्र के सम्बन्ध में की गयी है। विश्व कोष में राष्ट्र के सम्बन्ध में कुछ इस प्रकार कहा गया है—'वह लोक समुदाय जो एक ही देश मे बसता हो या जो एक ही राज्य या शासन में रहता हुआ एकताबद्ध हो'। एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका × के आधार पर 'राष्ट्रीयता समभावना और संगठित स्वत्व पर ही आधारित है। उसके किसी अन्य विशेष लक्षणों के आधार पर उसकी परिभाषा सम्भव नहीं'। परन्तु राष्ट्र की ये परिभाषायें व्यापक नहीं हैं। ये अपूर्ण सी लगती हैं। विश्व के अनेक स्वीकृत राष्ट्र इन परिभाषाओं की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। स्विट्जरलैण्ड, रूस इत्यादि अनेक राष्ट्र विभिन्न भाषाओं, बोलियों, राज्यों एवं जनपदों से युक्त है। अनेक धर्म, मत के अनुयायी यहां मिलते है। फिर भी

× *Nationality*—A some what vague term, used strictly in International Law for the status of membership in a nation or state and in a more extended sense in political discussion to denote an aggregation of persons claiming to represent a racial, territorial or some other bond of unity, though not necessary recognised as an independent political entity. In this latter sense the word has often been applied to such people as the Irish, the Americans and the Czechs. A "nationality" in this connexion represents a common feeling and an organised claim rather than distinct attributes which can be comprised in a strict definition.

ये राष्ट्र माने जाते हैं। अपना पड़ोसी देश 'इस्लामिक स्टेट आफ पाकिस्तान' जिसकी भाषा और संस्कृति की एकता तो अलग, भौगोलिक स्थिति भी एक नहीं है, आज बडे गर्व से अपने को राष्ट्र कहता है।

तो फिर राष्ट्रीयता है क्या ? क्या प्रोफेसर मेडगल के मतानुसार राष्ट्रीयता एक भावनाजन्य मनोवैज्ञानिक स्वरूप है या आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल के अनुसार 'राष्ट्र चेतना का आधार शासनतंत्र या भूखण्ड विशेष का आश्रयी नहीं। वास्तव मे राष्ट्रीय भावना का केन्द्र हुआ करता है—उन्नत मानव का महज स्वीकृत वह जीवन-दर्शन जो सांस्कृतिक ऐक्य, आचार ऐक्य तथा लौकिक और पारलौकिक ऐक्य की आधारशिला पर स्थित रहता है"। इसीलिए तो महाद्वीप की समता करने वाला भारत जिसके प्रदेशों मे विश्व के कतिपय राष्ट्र समाहित हो सकते हैं, अनेक धर्मों, वर्गों, मतों, भाषाओं एवं जातियों के होते हुए भी और समय २ पर शासनतन्त्रों के बदलते रहने पर भी,एक राष्ट्र ही रहा है। उसकी राष्ट्रीयताकी वंशी काश्मीर से कन्याकुमारी तक तथा सिन्धसे आसामके दूरवर्ती छोर तक बजती रही है। आज ही क्यो, सदियों पूर्व से हमारी यही भावना रही है। हमने एकता का राग गाया है और अनेक बिखरे तन्तुओं में सामंजस्य की रेखा खींची है।

"कलिंगाग, वंगान्ध्र, कद्राविडादीनुपाधीन् विहायैक्य आलम्बभूयः।
अये। भारतीयाः मताना विभेदैः अलम् देश भेदेन वैरेण चालम्॥

प्रागैतिहासिक काल से हमने आसेतु हिमाचल के एक राष्ट्र पुरुष की मूर्त्ति अपने नेत्रों मे बसा रखी है, जिसके चरणो पर हम श्रद्धा के फूल चढाते हैं एवं जिसके मन्दिर मे प्राणो के दीप जलाते हैं। सर्वदा अपने युग पुरुषों एवं महामानवो मे हमने अपने राष्ट्र देवता के दर्शन किये है। आदि कवि ने अपनी रामायण मे राम का गुण गान करते हुये उन्हें 'समुद्र इव गाम्भीर्ये स्थैर्य च हिमवानिव' कहा है। इस प्रकार एक साम मे वाल्मीकि ने हमे हिमालय के उत्तुंग

शिखर से लेकर पृथ्वी के पदप्रक्षालक उदधि तक के विराट राष्ट्र देवता के दर्शन कराये हैं। स्थिरता हिमालय की एवं गम्भीरता महासागर की। श्लोक के एक ही चरण में उत्तर से दक्षिण भूभाग तक का कैसा सुन्दर समन्वय है, कितनी अनूठी सूझ है।

भारत का निवासी चाहे वह यवन ही क्यों न रहा हो, उसने देश की संस्कृति को अपनाया है। उसने भारतीय साहित्य और भाषा को प्यार किया है। जायसी, रसखान, रहीम इत्यादि अहिन्दुओं को भी भारतीय साहित्य की भागीरथी के पुण्योदक से अपनी वाणी को पवित्र करते हमने देखा है।

इससे यह स्पष्ट है कि राष्ट्र निर्विवाद रूप से धर्म एवं राजनीति की एकता का नहीं, अपितु भावनाओं एवं संस्कारों की एकता का प्रतीक है।

राष्ट्रीय कविता के दो उपकरण हमारे सम्मुख हैं। एक है रूपात्मक एवं दूसरा भावनात्मक। रूपात्मक स्वरूप मे राष्ट्र की धरती, वन, पर्वत, नदी, नर, नारी इत्यादि के चित्रण होते हैं। एवं भावनात्मक स्वरूप मे चिन्तन की एक सूत्रता दिखाई देती है। चिन्तनशीलता सृजन और संहार दोनों ही पक्षों से युक्त हो सकती है। व्यक्ति की राष्ट्रीय भावना राष्ट्र के सभी तत्वों को प्यार करती है। उसे भूत, वर्तमान और भविष्य सभी में एक आन्तरिक अपनेपन का अनुभव होता है। सबके प्रति वह आस्थावान रहता है तथा सबमे उसकी श्रद्धा रहती है।

'माता भूमिः पुत्रोहं पृथिव्याः'—इस प्रकार वैदिक साहित्य में भी उस भावना का उल्लेख हम पाते हैं। धरती हमारी माता है, हम उसके जाये हैं, उसकी गोद में पलकर अन्न, जल, वायु जैसे पोषक तत्वों को उसी से पाकर हम बढ़े हैं, जी रहे हैं, यह भाव समुन्नत मानव की सद्वृत्ति की प्राचीनतम प्रतीति है।

पराधीनता की विवशता मे केन्द्रीभूत असन्तोष अनायास ही राष्ट्र के सभी तत्वों के प्रति प्रेम को जागृत कर देता है। अतः

राष्ट्रीयता के रूपात्मक एवं भावनात्मक दोनों ही तत्व उग्र हो उठते हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने काव्य के माध्यम से राष्ट्रीय भावना को सार्वजनिक रूप से प्रेरित कर दिया। हरिश्चन्द्र की कुछ रचनाओं में, प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में रूपात्मक राष्ट्रीय भाव मिलते हैं। भारतेन्दु के साहित्य में प्रवेश करते ही हिन्दी कविता को एक व्यापक क्षेत्र मिला। उनके समकालीन कवियों के सम्मुख राष्ट्र का स्वरूप निखरने लगा और देश की तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियाँ उनपर प्रभाव डालने लगीं। वह स्वरूप आधुनिक कविता में विशेष रूप से स्पष्ट हुआ। देश-प्रेम की जिस भावना का उद्गम स्थान भारतेन्दु की कविता थी उसी का अति परिवर्द्धित रूप श्री मैथिलीशरण गुप्त की कविता से होता हुआ राष्ट्रीय धारा के प्रमुख कवि सर्वश्री 'एक भारतीय आत्मा', 'नवीन', सुभद्रा-कुमारी और गयाप्रसाद शुक्ल (त्रिशूल) की कविता मे विशेष प्रकार से फूट पड़ा। 'एक भारतीय आत्मा' ने काव्य की आत्मा एवं राष्ट्री-यता को समन्वित किया और इस प्रकार एक नवीन शैली को जन्म दिया।

इस काल की वेग से प्रवाहित होनेवाली विशुद्ध कलात्मक धारा सहसा कुछ मन्द सी पड गयी और अन्यथा इसकी आश्रयिनी होने वाली भावी काव्य-प्रतिभा राष्ट्रीय प्रवाह में उमड़ चली। लेकिन 'भारतीय आत्मा' भी केवल कलात्मक रूप के समर्थक न होते हुए भी यत्रतत्र शब्द चित्रों की सुबोध मंजूषा सजाये विना न रह सके। भाव चित्रण में सिद्धहस्त होते हुए भी जनता की भावनाओं तक पहुँचने के लिये उन्होंने भाषा को साधारण ही रखा। इससे भी उनकी कलात्मकता का थोड़ा हनन माना जा सकता है।

इसी आदर्श को नवीन ने भी निभाया। किन्तु उनमें विशुद्ध कला-सेवा गौण है और भावों का आवेश प्रधान है। साधारण शब्दों में जैसे ज्वालामुखी स्वत. फूटा पड़ता है। नवीन प्रमुखतया राष्ट्रीय कवि हैं, परन्तु उनके काव्य में संकेतवाद भी आ ही गया है। नवीन

को हम राष्ट्रीय जीवन के किसी भी क्षेत्र मे पीछे नहीं पाते। एक व्यक्ति एवं पत्रकार के नाते उनके जीवन का राष्ट्रीय पहलू हमने पिछले अध्याय में देखा है। कवि 'नवीन' की राष्ट्रीय भावना पर विचार करना ही इस अध्याय का लक्ष्य है।

'नवीन' की राष्ट्रीयता विशेषतया भावनात्मक रही है। कवि का प्रादुर्भाव ऐसे काल मे हुआ जब देश का कण-कण परतन्त्रता की कचोटो से आहत हो उठा था। ऐसी दशा मे देश भक्ति की कविता इस परिस्थिति से अलग न रह सकी। वर्तमान युग विशेषतया महात्मा गाधी और काग्रेस के आन्दोलनो का युग रहा है। सविनय अवज्ञा आन्दोलन का आरम्भ स्वतन्त्रताके अन्तिम युद्ध का श्रीगणेश माना जाता है। सत्याग्रह आन्दोलन के अवसर पर जहाँ जनता ने कठोर अग्नि परीक्षा दी और देशभक्ति की भावना की पूर्ण अभिव्यक्ति की, वहीं देश के कवियों ने अपनी लेखनी के माध्यम से वाणी की उस अमोघ शक्ति का परिचय दिया जो अप्रतिम है। वस्तुतः सत्याग्रह आन्दोलन द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति का जो सफल प्रयास इस देश में हुआ—उसका उदाहरण विश्व के इतिहास में ढूँढ़ने पर भी न मिलेगा। इस सत्याग्रह का आधार नैतिक था एवं इसकी अन्तर्निहित सात्विकता मे वह शक्ति थी जिसने व्यक्ति व्यक्ति को आत्मबलिदान की प्रेरणा दी। साथ ही भारत के सत्याग्रह आन्दोलन की जो अपनी विशेषता है—वह भी विश्व के अन्य राष्ट्रो के स्वातन्त्र्य-संग्राम में अपने तरह की एक ही है—हम स्वतन्त्रता की देवी का स्वागत—लहू-लुहान पथ पर नहीं, अपितु सुरभि-सिंचित मार्ग पर करना चाहते थे क्योंकि हमारा तो उद्देश्य ही था—'भू भाग नहीं शत शत मानव के हृदय जीतने का निश्चय'।

देश की आशा और अभिलाषा के अनुरूप ही वर्त्तमान कवियों ने भी अपनी क्षमता प्रकट की। इन कवियों की ओजभरी सात्विक पुकार लोगों की आत्मा तक पहुँची और फलस्वरूप सारे देश मे एक प्रकार की सात्विक उत्तेजना की लहर सी दौड गई। कवियों की

वाणी ओजपूर्ण थी एवं उनका जीवन कर्मठ था। अपनी अधिकांश रचनाओं में वे प्रतीकात्मक रूप में वीर सत्याग्रहियों के युद्धों का गुण-गान कर उठे। आज की राष्ट्रीय भावना की कविता में क्रियात्मकता कूट-कूट कर भरी हुई थी। कवि कोरे उपदेशक ही नहीं, वरन् वीर सेनानी भी थे। मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिये यह परम आवश्यक था कि देशवासियों में अपार सहनशीलता, दृढ़ता और आत्मबलि-दान की भावना जगायी जाय। इसी की प्रेरणा के फलस्वरूप राष्ट्रीय काव्य आया जो नैसर्गिक कोमलता एवं मर्मस्पर्शी भावनाओं से ओत-प्रोत था।

उस युग के प्राय. सभी कवियों ने अपनी ओजपूर्ण राष्ट्रीय-वाणी को काव्य के माध्यम से प्रकट किया, परन्तु उन सब मे अलग से जो एक गम्भीर वाणी गड़गड़ाते बादलों के भयानक रव जैसी सुनाई पड़ी वह थी पं० बाल कृष्ण शर्मा नवीन की भीम गर्जना, जिसने विप्लव मचा दिया और जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप देश का कोना कोना तन्द्रा छोड़ आत्म-बलिदान की ओर बढ़ चला।

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल पुथल मच जाये
एक हिलोर इधर से आये
एक हिलोर उधर से आये
प्राणों के लाले पड़ जायें
त्राहि त्राहि रव नभ मे छाये
नाश और सत्यानाशों का
धुआंधार जग मे छा जाये
बरसे आग जलद जल जाये
भस्मसात् भूधर हो जायें
पाप पुण्य सद् सद् भावों की
धूल उड़ उठे दायें बायें।
नभ का वक्षस्थल फट जाये

तारे टूक टूक हो जाये
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल पुथल मच जाये।

कवि एक अग्निमयी क्रान्ति चाहता था, जिसमें परतन्त्र राष्ट्र का कण कण भस्मीभूत हो जाये। इस भयानक महानाश के आह्वान के पीछे सुन्दर निर्माण की भावना ही कवि को इसके लिये अनुप्रेरित करती सी जान पड़ती है। इसके लिये वह देश की आँखों मे पानी नहीं अपितु लहू तिरता हुआ देखना चाहता था। वह कायरता को 'कंपा कर गतानुगति को विगलित कर देना' चाहता था, एक ऐसा विप्लव चाहता था, जिससे धरती की करवट ही बदल जाय, पुराने अंधविश्वासों का गढ़ ढह जाय और रूढ़िवादिता नष्ट हो जाय। (वस्तुतः हम किसी विशेष शासक के दास नहीं– हम तो अपनी कमजोरियों के ही गुलाम हैं—उनका परित्याग ही हमारे कल्याण का कारण हो सकता है। इस प्रकार का संकेत भारत दुर्दशा मे भारतेन्दु ने किया है। इसके बाद एक प्रबल हुंकार देश के कोने कोने को वेध जाय और अन्तरिक्ष भी मानो इसी के संकेत पर चलि होने को उद्यत दीखने लगे। कवि चाहता था—

'आज अनल गायन कुछ ऐसा
उमड़े जग विह्वल हो जाये'

एक ऐसा प्रलय संगीत जिससे अग्नि के स्फुलिंग झड़ रहे हों. जिसको सुन कर एक विह्वलता संसार में भर जाय. एक ऐसी क्रांति जिसकी प्रतिक्रिया विश्व के कोने कोने मे हो जाय। भारत का यह आन्दोलन विश्वको दासतासे मुक्त करनेका संदेश था। गांधीके सामने सार्वभौम मानवता का प्रश्न था. अपने देश का ही नहीं और यह कोरी कल्पना की ही वस्तु न हो कर पूर्णरूपेण सार्थक भी हुआ। इतना ही नहीं बल्कि—

नियम और उपनियमों के ये
बन्धन टूक टूक हो जाये

विश्वम्भर की पोषक वीणा
के सब तार मूक हो जाये
शान्ति दंड टूटे उस महा
रुद्र का सिंहासन थर्राये
उसकी श्वासोच्छ्वास दाहिका
जग के प्रागण मे घहराये।
नाश! नाश!! हो महा नाश!!! की
प्रलयंकरी आँख खुल जाये
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे अंग अंग झुलसाये।

यहाँ प्राकृतिक नियमों के विनाश की कामना नहीं-अपितु स्वार्थी मानव द्वारा निर्मित नियमों एवं उपनियमों के नाश के लिये ही कवि कटिवद्ध है।

आज जब देश स्वतन्त्र है, अपने घरमे अपना राज है, तो सम्भवतः हम कवि की इस प्रलय की अकाक्षा को भली प्रकार परख-न सकें, परन्तु जब हम काल एवं परिस्थिति के आलोक मे 'नवीन' की इस प्रखर क्रान्तिकारिणी राष्ट्रीय चेतना के दर्शन करते हैं, तो कवि का समर्थ स्वरूप, उसका भावावेश, प्रवाह, प्रभाव और सच्चाई हठात् आँखों के आगे नाच उठती है। किसी सुरम्य नगर की क्रोड़ में एक सजे सजाये कमरे मे चौकीदारों और पहरेदारों के बीच यदि हम सिंह के आ जाने की कल्पना करें और उसी के भय से कॉप उठे तो सम्भवत यह सारा व्यापार ही नाटकीय सिद्ध होगा। किन्तु एक घने जंगल मे, ऐसे समयमे जब शाम नजदीक आती जा रही हो, अंधेरा घना होता दीख रहा हो,गगन मेघाच्छन्न हो,बोलने पर अपनी ही छूछो प्रतिध्वनि निराश लौट आती हो, अवसाद क्लेश एवं भूख प्यास से शरीर ढीला पड़ता जा रहा हो और उसी क्षण थोडी दूर पर शेर आता दिखाई दे, तो सचमुच कातर पथिक की स्थिति एवं तत्कालीन मनोदशा का अनुमान लगाना कठिन न होगा। ठीक इसी प्रकार जब अपना देश अभिशप्त परवशता की भूमिका मे दम

तोड़ रहा था, जब परतन्त्रता और आत्मग्लानि की ज्वाला से जलते हुये भारतीय समाज की चिरौंध से सांस लेना कठिन था, तो उसके सर्वनाश का भैरव हुँकार कितना प्रबल, कितना पूर्ण और कितना उपयुक्त था यह समझ लेना सरल है।

कवि नवीन के जीवन में विप्लव साकार होकर हुँकार भर रहा है।

कण कण में है व्याप्त वही स्वर
रोम रोम गाता है वह ध्वनि
वही तान गाती रहती है
कालकूट फणि की चिन्तामणि
जीवन - ज्योतिर्लुप्त है अहा
सुप्त हैं संरक्षण की घड़ियाँ
लटक रही हैं प्रतिपल में इस
नाशक सम्भक्षण की लड़ियाँ
चकनाचूर करो जग को, गूँजे
ब्रह्मांड नाश के स्वर से
रुद्ध गीत की क्रुद्ध तान है
निकली मेरे अन्तर तर से।

कवि के हृदय का आन्तरिक मंथन फुफकार लेकर निकल पड़ा और वह देश की असहनीय कातरता को समूल उखाड़ फेंकने के लिये दृढ़ता से भर उठा। 'दिल को मसल मसल मैं मेंहदी, रचवा आया हूँ यह देखो' से स्पष्ट लक्षित होता है कि जीवन की समस्त रंगीनियों का गला घोंट कर कवि भयंकर विध्वंस की तैयारी में संलग्न है। वह नियति को चुनौती देता सा जान पड़ता है।

विश्वमूर्ति हट जाओ !! मम
यह भीम प्रहार सहे न सहेगा
टुकड़े टुकड़े हो जाओगी
नाश नाश अवशेष रहेगा

आज वह जैसे अपना सर्वस्व होम कर देने पर ही तुला हुआ है।

जीवन गीत भुला दो कण्ठ
मिला दो मृत्यु गीत के स्वर से

परन्तु यह महानाश क्या मात्र नाश के लिये ही होगा ? ऐसी एक स्वाभाविक शंका उठ जाती है। इसका समाधान भी कवि प्रस्तुत करता है।

दहल जाय दिल पैर लड़खड़ाये
कंप जाय कलेजा उनका।
सर चक्कर खाने लग जाये
टूटे बन्धन शासन गुण का

वह इस महाक्राति का एकमेव लक्ष्य शासन गुण के बन्धन का टूटना ही मानता है। वस्तुत वह बन्धन उस समय तक इतना जटिल हो चुका था कि उसकी गाँठें जीवन की प्रत्येक दशा के मार्ग मे व्यवधान वनकर आ जाती थीं। अतः पंखों की फरफर करने वाले कवि के लिये यह आवश्यक हो गया कि चाहे उस शासन गुण के बन्धन को तोड़ने के लिये महारुद्र के सिंहासन को ही थरथराना पडे किन्तु उसको तोड़ना परमावश्यक है।

जीर्ण वस्त्र में, टूटे खंड़हर मे जिस प्रकार पैवन्द वाजी से काम नहीं चलता और उनका आमूल परिवर्तन ही नवनिर्माण की पृष्ठ-भूमि वनता है उसी प्रकार अपने गलित राष्ट्र की समस्त कुत्साओं का सर्वनाश कर कवि स्वर्णिम नव निर्माण की पृष्ठभूमि प्रस्तुत कर रहा है।

धरती मे वीज डालने वाले से अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य होता है ऊसर धरती को उर्वरा वनाने वाले का। कुछ इसी प्रकार का कार्य राष्ट्रीय प्रकरण मे 'नवीन जी' का रहा है। उस महानाश की भूमिका में घोर विप्लव भरा हुआ है, परन्तु उसका एक प्रकाशित स्वरूप भी है और वह है अंग्रेजी शासन का सर्वनाश।

अंगरेजी शासको को चेतावनी देते हुये नवीन जी कहते है।

वंचक ! सावधान !! पुण्य स्थल
है, यह हृदय टटोलो तुम
राष्ट्रों के जीवन में होता
नहीं कहीं कुत्सित व्यापार

कवि अंगरेजी राज्य की कुत्सित नीतियो की ओर संकेत करता है। शुद्ध राष्ट्रवादी कवि नवीन अंगरेजो की कुनवापरस्ती, फिरकापरस्ती और 'बांटो और राज्य करो' की नीति से तिलमिला उठा है। कवि की ऊर्जा जग उठी है और बड़े ही कटु शब्दों में वंचक से वह राष्ट्रों के सम्बन्ध मे निर्मल नीति वरतने को ही कहता है। राष्ट्रवादिता घोर घृणा से अत्यन्त दूर जीवन के पूत प्यार में ही पलती है। अंगरेज शासको की दुर्नीति एवं असमन्वय वादी धारणाओं की कटु निन्दा करता हुआ कवि भारतीय जीवन की करुणा को साकार कर रहा है।

अपने निर्मल अविश्वास का
कालकूट मत घोलो तुम
यहाँ नेत्र कण झर झर कर है
वना चुके निर्मल का सार

करुणा भारतीय साहित्य जीवन की भूमिका है। संक्रमण कालीन जीवन में जब स्वदेश और स्वराष्ट्र की विमल राका परवशता के गहन तिमिर से आच्छादित हो जाती है और जीवन का समाधान डगमगा जाता है तो मानव की अन्तर्निहित करुणा स्वतः उभर आती है। नवीन के जीवन की दृढता मे भी करुणा मिली हुई है।

इसी करुणा की वारिधारा में अवगाहन करके भावनाओं ने नव जागृति के मोती निकाले हैं।

कई सुपुप्ता आशायें, इम
भर के निर्मल कल जल में

सुस्नाता होकर ले आई
हैं नव जागृति के संदेश।
हे ठग। उसी पुण्य सरको तुम
करो न परिणत अब मल में
निश्चेष्टता तथा निर्वलता
का न करोगे क्या अब शेष।

जब राष्ट्र पर परतन्त्रता कलंक का टीका लगा हो तो राष्ट्रसेवी का एक ही कर्तव्य होता है और वह है सब गवांकर भी अपनी हुई खोई आजादी हासिल करना। कवि नवीन की राष्ट्रवादी चेतना सर्वदा इसके लिये सतर्क है। वह विदेशी शासकों से कहता है :—

जीवन एक पहेली बन कर
आया है इसको बूझो
वंचक। सावधान !! पुण्य स्थल
है यह, मत हिचको, जूझो।

वह वैरियों को रण के लिये आमन्त्रित करता है। तथा भारत भूमि को पुण्य-स्थल घोषित करता है। पुण्य जीवन का प्रकाश है, परन्तु हमारे पुण्य स्थल पर तो महानाश की काली छाया मंडरा रही थी। इस क्रूर कालिमा को हटाने के लिये जीवन की होली जलानी होगी। भारत के करोड़ो नरनारियों को कवि मूक वलिदान के लिये प्रेरित करता है।

चढ़ चल, चढ चल थक मत रे वलि
वध के सुन्दर जीव
उच्च कठोर शिखर के ऊपर
है मन्दिर की नींव॥

मीरा के पिया की सेज तो शूली ऊपर थी और उन्हें यह प्रश्न विकल कर रहा था कि 'केहि विधि मिलना होय' परन्तु यदि ठीक उसी प्रकार नहीं तो सम्भवतः उसी प्रकार नवीन का देवता भी उच्च

कठोर शिखर के ऊपर है। अन्तर केवल इतना ही है कि पहला अध्यात्मिक है और दूसरा राष्ट्रीय। दोनों के पास साधन एक ही है तपःपूत होना और दोनों की अपेक्षा है आत्म वलिदान। उस राष्ट्र देवता के दर्शन में वड़े वडे व्यवधान हैं। परंतु कवि तो समर्थ है और नरेन्द्र शर्मा के शब्दो मे 'वह अपना स्वामीमधु अक्षय' है।

वडे वड़े ये शिला खंड मग
रोके पड़े अचेत
इन्हे लाघ तू यदि जाना है
तुझे मरण के हेत

मानव जीवन पाकर कीट-पतंगो की जिन्दगी से अच्छी तो मौत ही है। वह मौत भी सुखकर है क्योकि उस शव पर ही स्वतन्त्रता की भित्ति उठने वाली है। कवि कुत्सित जीवन की अपेक्षा मृत्यु को ही श्रेयस्कर समझता है। यह आत्मवलिदान नव निर्माण के लिये ही तो है।

ऊपर अगम शिखर के ऊपर
मचा मृत्यु का रास
नीचे उपत्यका मे जीवन
पंकिल का है त्रास।

कवि थोड़ा शंकित है। सम्भवतः वह सोचता है कि जीवन के मधुमय स्वप्न उसे इस मार्ग से विचलित कर देगे। परन्तु वलिदान की पूत भावना को जगाकर कवि अगली पीढ़ी के लिये मार्ग प्रशस्त करता है।

चढ़ चल चढ चल थक मत रे तू
वलिदानो के पुंज
देख कहीं न लुभावें तुझको
यह जीवन की कुंज
मधुर मृत्यु का नृत्य देख तू

देने लग जा ताल
अपना शीश पिरोकर कर दे
पूरी माँ की माल

वह जीवन की क्षण भंगुरता की ओर भी संकेत करता है और मोहक स्वप्नों से ऊपर उठकर राष्ट्र की स्वतन्त्रता हेतु आत्मवलिदान के लिये उद्यत होने का संदेश देता है।

है जीवन अनित्य कट जाने
दे तू, मोहक बन्ध
करदे पूरा आत्म निवेदन
का तू आज प्रवन्ध।

आत्म वलिदान का यह पूत मन्त्र जन-जन मे व्याप्त हो चला। स्वतन्त्र हो जाने की भावना प्रवल हो उठी और व्यक्ति-व्यक्ति 'नीचे उपत्यका में पंकिल जीवन का त्रास' छोड 'अगम शिखर के ऊपर मचे हुये मृत्यु रास, का कौतुक देखने के लिये मचल उठा। अहिंसक सेनायें ग्राम ग्राम और नगर नगर में तिरंगा लहराते हुए वलि बधि के सुन्दर जीवों की भाति गले मे माला डाल लीला पुरुषोत्तम की पुण्य-स्थली का दर्शन करने वढ चली। शासन ने इन सेनाओं पर महानाश के चक्र फेरे और इन्हें सीखचों के पीछे कर दिया गया एवं अनेकों का हृदय गोलियों से छलनी कर दिया गया। राष्ट्रीय भावना जागृत करने के लिये इन सत्याग्रहियोंके वन्दी जीवन के वडे ही मार्मिक विवरण, जो हमारी समानुभुति पूर्ण भावनाओं को उद्दीप्त करते हैं—नवीन ने प्रस्तुत किये है।

ताला कुन्जी लालटेन
जंगला कैदी ये सब है ठीक
खींच चुकी है नौकरशाही
अपने सर्वनाश की लीक
चक्कर से रोटी आवेगी
डब्बू भर आवेगी दाल

तू शकटार बना है पापी
नन्द वंश का जीवित काल
तेरी चक्की के ये गेहूँ
पिसते है पिस जाने दे
चक्की पिसवाने वाले को
मिट्टी में मिस जाने दे ।

आदरणीय गणेशशंकरजी विद्यार्थी की द्वितीय जेल यात्राके अवसर पर उन्हीं को सम्बोधित कर लिखा गया यह गीत हमारी भावनाओ को जगाने एवं उनमे ओज भरने के लिये पूर्ण है। जेल जीवन का सच्चा चित्र उपस्थित कर भूत और वर्तमान को एक मे मिला कवि ने ऐतिहासिक पुनरावर्तन को भी स्पष्ट कर दिया है। अंग्रेजों का यह अत्याचार आज का नहीं अपितु कुशासन पर सुशासन चाहने वालों का यह अत्याचार बहुत पुराना है। अतः कवि यहाँ स्पष्ट कर देना चाहता है कि विजय श्री अन्त मे इन स्वतन्त्र सेनानियों को ही वरण करेगी। वन्दी गृह से छूटे हुए सत्याग्रहियो का भी नवीन ने स्वागत किया है।

मा ने किया पुकार, बढ़ा तू, चढ़ा हुआ कुर्बान
हमने देखा तुझे टहलते, सिकचों के दरम्यान
हाथों मे थी मूज कभी बैठा चक्की पर गाते
कंबल बिछा ओढ कंबल, दिन बितादिया मदमाते
बहुत दिनों के बिछुड़े प्यारे अंतर हिय से सट जा
आज रिहाई हुई दौड़ आ, मोहन गले लिपट जा।

कवि कितना स्पन्दित है। उसके हृदय मे बिछुड़े साथी से मिलने की कितनी व्यग्रता है, कितना कौतूहल है, कितना उल्लास है। रोम रोम से जैसे भावनायें फूटी पड़ रही हों। जीवन मे जैसे उस अमर सेनानी को पाकर एक राग उभर आया हो। कितना साकार है कवि का आत्मोल्लसित राष्ट्रवादी स्वरूप।

परन्तु सत्याग्रह संग्राम इतनी जल्दी सफल होने वाला नहीं था.

चित स्वतन्त्रता की देवी को इतने बलिदानों से संतोष नहीं हुआ । देश के नेताओं ने मजबूर होकर अपनी योजना बदल दी और ग्रेस ने सत्याग्रह आन्दोलन बन्द कर दिया । आन्दोलन के बन्द ोते ही देश में निराशा छा गई ।

बहुतों ने इसे अपनी पराजय के रूप में देखा । उन्होंने इसे अपने ऊपर साम्राज्यवादी शासकों की विजय समझी । नवीन को इससे निराशा हुई और कवि के मनोभाव अभिव्यक्ति की सीमा से बाहर हो गये ।

आज खड्ग की धार कुठिता
है खाली तूणीर हुआ
विजय पताका झुकी हुई है
लक्ष्य भ्रष्ट यह तीर हुआ
बढती हुई कतार फौज की
सहसा अस्त व्यस्त हुई
त्रस्त हुई भावों की गरिमा
महिमा सब सन्यस्त हुई
मुझे न छेड़ो इतिहासों के पन्नों
मे गति धीर हुआ ।

कवि का धैर्य छूट गया है, वह किंकर्त्तव्य विमूढ है । उसे वि वेदना सता रही है, भूलकर भी वह अपनी पराजय भूल नहीं पात अहिंसक सैन्यो का परिचालन एवं उनका प्रत्येक क्रियाकलाप र मानस में बसा हुआ है ।

वह संघर्षण की घटिका, है
बसी हुई हिय मे ऐसे
जैसे मा की गोदी मे शिशु
का दुलार बस जाता है
जैसे अंगुलीय मे मरकत
का नव नग, कस जाता है ।

जब राष्ट्रीय भावना और कवि का यह सम्बन्ध है तो उसकी उपादेयता एवं ईमानदारी भी उतनी ही स्पष्ट समझी जानी चाहिये। पराजय का वातावरण कवि के हृदय मे टीस पैदा करता है और लाचारी से क्रोध की लाली करुणाके आंसुओं मे डूब जाती है।

घूम गया जो चक्र उसी की
ओर देखता जाता हूँ।
इधर उधर सब तरफ पराजय,
की ही मुद्रा पाता हूँ
आँखों का ज्वलन्त क्रोधानल
क्षीण दैन्य का नीर हुआ
आज खड्ग की धार कुंठिता
है खाली तूणीर हुआ

जब मनुष्य का वश नहीं चलता, चाहते हुये भी वह कुछ कर नहीं पाता, तो उसे झुंझलाहट होती है। विजयी नवीन ने जीवन मे कभी पराजय नहीं देखी। इसीलिए आज की यह विवशता-भरी-पराजय उन्हें उद्विग्न कर रही है और वे अपना अस्तित्व ही मिटा देने को तैयार हो जाते है।

अरे पराजित ओ रणचंडी
के कपूत, हट जा, हट जा
अभी समय है, कह दे मां मेदिनी
जरा फट जा फट जा

कायरता के पंकिल से सने देश को देखकर कवि की आँखें सकुच रही है और इसीलिए वह धरती से आश्रय मांगता है। सत्याग्रह आन्दोलन की समाप्ति पर कवियों की निराशा स्वाभाविक थी। नवीन का जीवन बड़ा ही ऊर्जस्वित रहा है। सर्वदा प्राणों का दाय सम्बल लेकर कवि महत्त्व के उच्चशिखर पर चढने के लिये सजीव एवं दृढ़ रहा है। भूत से अनुराग रखते हुए भी कवि को यह मान्य नहीं

कि निष्प्रयोजन उसी का मनका फेरा जाय। वर्तमान यदि संदिग्ध है, भूत यदि ज्वलन्त है तो कवि भविष्य की ही योजना में संलग्न दिखाई देता है। राष्ट्र का प्रखर स्वरूप भी तभी क्षुर होगा, जब अनर्गल प्रलाप, पश्चात्ताप और अनुताप छोड़कर उसे भविष्य के सुघड़ साँचे में ढालने की चेष्टा की जाय।

सच्ची चिन्तनशीलता छोड़ यदि भाँति भाँति के कल्पना प्रसूनों का ही रस लिया जाय तो योजना की सार्थकता ही नष्ट हो जायेगी। नवीन को भावी की चिन्तायें व्यग्र कर रही है।

भावी की चिन्ताएँ सम्मुख अब आयी हैं
विषम समस्याओं को घेर घेर लायी हैं।

युग की निराशा कवि की निराशा होती है। सन् ४२ के जन आन्दोलन की विफलता के पश्चात् भारतीयों पर कुछ क्षण के लिये एक कुहासा सा छा गया। जीवन का उत्साह लुप्त सा हो गया और भविष्य ऊहापोह के हिंडोले मे झूलने लगा। राष्ट्रीय भावनाओं को जगाने वाली एक मात्र संस्था काग्रेस पर प्रतिबन्ध लग गया। उसके छोटे बड़े सभी सेनानी जेलों मे डाल दिये गये। नौकरशाही का आतंक बढ़ चला और यह सोचना कठिन हो गया कि अब आगे क्या होगा। क्रूर दमन, नृशंसता, बर्बरता एवं भयंकर शोषण से जनता त्राहि त्राहि कर उठी, समाधान असम्भव दीखने लगा। राष्ट्र विपन्न हो उठा और जन, जन, जीवन का संतुलन ही खो बैठा। कवि नवीन भी, मस्ती जिनकी थाती है, किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो कह उठे :—

प्रश्नों की उलझी सी मालाये गले डाल
बन नृमुड माली सा आया है विकट काल
सर्वनाश का श्मशान जाग उठा है कराल
अट्टहास करती सब, योगिनियाँ धाई हैं
विकट समस्याये बन, घिर घिर वे आई हैं।

वह समय उससे भी कहीं अधिक विकराल था। पथ यदि स्पष्ट

है तो चाहे जितना दुर्गम हो, पार किया जा सकता है। परन्तु अमावसी राह के लिये तो सर्वप्रथम एक प्रकाश की किरण चाहिये ही। अंधेरे का मुसाफिर थरथरा उठता है, डगमगा उठता है, उसे अपने अस्तित्व पर ही विश्वास नहीं होता। वह तो देहरी के दीप के सम्मुख घुटने टेक देना चाहता है। पर उसका कहीं पता भी तो हो। नवीन जी कराल सर्वनाश के जग उठने का कारण अपने में ही ढूढ़ते हैं। राह पार करने के लिये वे पहले अनेक बिखरे तन्तुओं में एक क्षीण सामंजस्य की रेखा का भी स्वागत करने के लिये प्रस्तुत हैं। वे सामाजिक वैषम्य को भी नहीं भुला पाते। उन्हें लगता है जैसे हमारा पारस्परिक वैमनस्य एवं अराष्ट्रवादी भावनायें ही इस नैराश्य-तिमिर के पारावार का सृजन कर रही हैं।

मानव की छाती पर मंडित हैं अरूप चिह्न
मानव की वाणी का अर्थ भेद भिन्न भिन्न
मानव का जीवन है, अश्रु स्वेद रक्त क्लिन्न
मानव ने ही अपनी गाँठें उलझायी हैं
भावी की चिन्तायें सन्मुख अब आई हैं।

वह युग था जब जीवन में घोर निराशा व्याप्त हो चली थी। परन्तु कवि नवीन में हमें जीवन का उत्स शिथिल नहीं जान पड़ता।

ऐसा लगता है मानों परिस्थिति अत्यन्त गम्भीर हो गई है और कवि के नस में चिन्तनशीलता उभर आई है। राष्ट्र का विकीर्ण स्वरूप प्रत्यक्ष है। वर्तमान कुहासा सा लग रहा है, जिसमें न तो सांझ की अरुणिमा है न भोर का आलोक। न तो हम पुरानी बातों को स्मरण कर ही संतोष कर पा रहे हैं न भविष्य की कोई सम्यक् कल्पना ही नयन गोचर हो पाती है। केवल एक ही अभिव्यंजना साकार हो रही है और वह है 'परवशता की मानव दृग में परछाई है'।

इतना ही नहीं बल्कि :

उलझा है वैयक्तिक, सामाजिक तारतम्य
भावी क्षण नहीं रहे कल्पना विचारमग्न

हिय में कैसे आये, कोई मनुहार रम्य
आज अनिश्चिततायें सभी ओर छाई हैं
भावी की चिन्तायें सम्मुख अब आई हैं।

वर्तमान की संकटमयी घड़ियों में जीवन की स्वाभाविकता ही नष्ट हो गई सी लगती है। ऐसी विपन्न अवस्था में भविष्य के सम्बन्ध में कोई कल्पना करना कवि को कठिन प्रतीत होता है। वह आशा और निराशा के सान्ध्य-स्थल पर खडा है। ऐसी दशा में वह केवल इतना ही सोच पाता है कि 'हिय में कैसे आये कोई मनुहार रम्य।' राष्ट्र पर जब इस प्रकार के काले मेघ छा जाते हैं तो प्राणों की निर्मम पुकार कर्त्तव्य की निष्ठुर पुकार से भी अधिक भयानक होकर चीत्कार कर उठती है और सच्चा देशभक्त कवि या लेखक उस समय अपने को रोक नहीं पाता। राष्ट्रकवि बाबू मैथिलीशरण गुप्त की पंक्तियों में भी प्रेम का आलाप छोड़ निष्ठुर कर्त्तव्य की प्रेरणा का संकेत मिलता है।

कातर हमारी मही दस्यु दलिता
नीर भरे नेत्रों से निहार रही हमको
छाती पर भूरि भार बोल नहीं पाती है
और हम उसकी प्रसूति युवा युवती
कामियों का क्रन्दन करें हां यहां बैठ के
प्रेम के प्रलाप रहें आज अब ओर से
निष्ठुर कर्त्तव्य. ही पुकारता है हमको।

इसी प्रकार के शुद्ध राष्ट्रीय स्वरूप जिसमें देश का भूत, भविष्य, वर्तमान, जीवन का उतार-चढ़ाव एवं राष्ट्र का ऊँचा नीचा धरातल एक ओर से दूसरी छोर तक साफ दिखाई देता हो नवीन के काव्य मे भरा पड़ा है।

भविष्य की एक सम्यक् कल्पना कवि के मानस मे खिंची हुई सी लगती है। इसीलिये वह सर्वदा बीते दिनों की याद को भुला देना चाहता है।

'बीती ताहि बिसारि दे आगे की सुधि लेहु' जैसी की भावना नवीन में भरी पड़ी है।

क्यों अनुताप, विषाद वृथा क्यों, क्यों स्मरणों की खेंचातानी
समझ-बूझकर भी, हे मानव अब फिर यह कैसी नादानी
जाने दो यदि चल गये है वे दिन, प्रहर, निमिष वे चंचल
ढरक ढरक मत गिर रे दृग जल।

भूत के लिये हम आँसू ही क्यों बहायें? कर्मठ जीवन में इसका महत्व ही क्या? यह तो पंगु और निष्क्रिय जीवो की कदर्थना है। भविष्य का कोई भी तन्तु इससे सुलझाया नहीं जा सकता। यदि जीवन मे बीते हुए दिन फिर लौट आते तो चिर नवीनता के दर्शन ही कहाँ होते?

अच्छा होता, यदि यों होता, पर वह गत तो है अपुनर्भव
गत यदि पुनरावर्ती होता, तो खो जाता जीवन नित नव
किन्तु नहीं हो सकता परिणत, वर्तमान मे लुप्त विगत कल
ढरक ढरक मत गिर रे दृग जल।

कल का विस्मरण ही दाहक भावनाओं को शीतलता प्रदान कर सकता है।

जीवन भी है एक पहेली, जो बीता उसको जाने दो
हो कटिवद्ध भविष्य शेष है, जो कुछ तू उसको आने दो
उसको ऐसा काट कि जिससे शीतल हो तव दग्ध हृदय तल
ढरक ढरक मत गिर रे दृग जल।

यहाँ सहसा कवि गतानुगति के अन्तर्द्वन्द्व की मीमांसा में दार्शनिक सा हो जाता है और अपनी कविता मे उपनिषदों का चिर-परिचित स्वर भर कर कह उठता है कि—जीवन मे ममता और मोह के लिये स्थान नहीं। प्रबल ममता और मोह के प्रेरक रति व्यापार और क्रीडा कौतुक को छोड कर, आँसुओको थाम कर हृदय

लौह बल भर लेने का सन्देश देते हुए नवीन जी कह उठते हैं :—

अपनी रहनी रह निर्मम सा
अपना पथ पहचान हठीले
ललक लालसा से मत कर तू
अपने लोचन गीले गीले।
लुज पुज तू रहा अब तलक
अब भर हिय मे सार लौह बल
अब मत ढरका अपना दृग जल।

कवि का सरल उद्गार शवों मे भी प्राण फूँकने के लिये पर्याप्त है। यह सच्चे हृदय की तीव्र अनुभूति है जिसमे स्वराष्ट्र को उन्नत करने एवं उसके धूमिल कलशों मे स्वर्णिम आभा भर देने की भावना छिपी हुई है। जीवन फूलों की सेज नहीं, यह तो कांटों का बिछौना है।

है कर्त्तव्य कठोर और है
जीवन पथ भी, क्षुर धारा सा
करले प्राप्त आज अपनापन
अब मत फिर मारा मारा सा
रे नर तू नारायण बन जा
मत हो कातर मत हो विह्वल
मत ढरका तू अपना दृग जल

कवि के सामने 'भावी क्षितिज विस्तार' फैला हुआ है, शासन सत्ता निर्माण और संहार के खेल खेल रही है। परन्तु उस आँखों मे 'दूर दर्शन भाव रोचन अँजा' है। वह कर्त्तव्य की कठो और जीवन की विकरालता स्पष्ट करता है। मानवता एवं रा सच्चा गायक नवीन मनुष्य को मारा मारा फिरता नहीं देख स वह तो उसे प्राणदायिनी शक्ति प्रदान करता है, एक ऊर्जा करता है, एक प्रकार का बल देता है, उसे नर से नारायण ब

को कहता है। चेतना की यह प्रखरता, राष्ट्रीयता का यह जागरूक रूप; निष्प्राणों में जीवन फूँकने वाली यह वाणी अन्यत्र दुर्लभ है।

कवि तो नरकङ्कालों में भी नारायण का विराट रूप प्रतिष्ठित करना चाहता है—'चाहे जग की छाती पर तिमिर भार और घोर अन्धकार छाया हो'।

'चाहे कज्जल का वर्धमान भूधर नभ पर उभरता हुआ भू पर भी उतर आया हो, चाहे वह अम्बर, अवनी, सबको चुपचाप निगलता जा रहा हो'। परन्तु कवि को इससे रंचमात्र भी भय नहीं है। वह तो धरती को आलोकित करने के लिये नक्षत्र लोक भी नीचे उतार सकता है।

पर हम क्यों छोड़ें धैर्य आज
क्यों डिगे हृदय का स्थैर्य आज
निज मे आमन्त्रित क्यों न करें
हम रविमण्डल तारक समाज।

आओ कर दें तम क्षार क्षार मिट जाये जग का अन्धकार।

जग का अन्धकार क्षार क्षार कर देने के लिये कवि एक अपूर्व आलोक से भरा हुआ है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की सी भावना नवीन के राष्ट्रीय जीवन का आलिंगन करती सी जान पड़ती है। प्रलय हुंकार, प्रगति का स्वर्गिक साम सङ्गीत, आशा-निराशा एवं अनेक उतार चढ़ावों से आवेष्ठित कवि का राष्ट्रवादी स्वरूप जीवन की स्फीत शिराओंमें स्वस्थ रक्त का संचार करता सा जान पड़ता है जैसा पहले हम कह आये हैं। इस युगके कवि-कोरे उपदेशक ही नहीं अपितु वीर सेनानी भी थे।

नवीनजी का भी अधिकांश-जीवन कारागार के शून्य कक्षोंमे ही बीता। साहित्य रचना भी अधिकांश इन्हीं चहारदीवारों के अन्दर हुई। ऐसी दशा मे मनोव्यथाओं का जगना, कोमल आशाओं का सो जाना, प्राणों का मोह, प्रेम की कल्पना, जीवन का उत्साह

एवं भावनाओं का ऊहापोह सभी मनोदशायें वडी ही मनोवैज्ञानिक एवं सजीव वन पड़ी है।

हम देखते हैं कि कवि के प्रत्येक कार्य व्यापार में सजीवता है। चाहे निराशाओं की थोडी देर के लिये भीड लग जाय, किन्तु तत्काल ही आशाओ की किरण डोर मानस को झकझोर डालती है और 'फट जाय कुहा भागे प्रमाद' वाली वात चरितार्थ होने लगती है।

कारावासी कवि नवीन ने जीवन के वेवस क्षणों को रो-गाकर विताया है। परन्तु उस वेवसी में भी राष्ट्रीय भावनाओंका आभास मिलता है।

एक बन्दी के लिये कहो तो क्या वरसात गई क्या आई
मेरा क्या आर्द्रा चित्रा यह, प्रिय मेरी क्या शरद जुन्हाई
क्या हेमन्त शिशिर ऋतु मेरा मेरी कौन वसन्त निकाई
खोकर सव ऋतु ज्ञान चला हूँ, मैं तो आज स्वयं को खोने

वस्तुतः यह कवि के जीवन का निर्मम एवं निस्पृह रूप है—जहाँ कर्मठता के अतिरिक्त आमोद-प्रमोद के किसी प्रसाधन के लिये स्थान ही नहीं। परिस्थिति की विवशता मनमें व्यथा अवश्य पैदा करती है, किन्तु वलिदान की पूत भावना को जगाकर कवि आत्मोत्सर्ग का मार्ग प्रशस्त करता है - जिससे लोक-कल्याण के अवरुद्ध मार्ग का द्वार खुले।

'हिय मे सदा चाँदनी छाई' यह उद्‌गार कवि की शाश्वत आशा-वादिता का द्योतक है। वह जीवन की वेवसी मे भी मुस्कराता है और राष्ट्रीय भावनाओंका जागरूक रूप प्रस्तुत करता है। फरवरी १९४४ मे केन्द्रीय कारागार वरेली मे लिखी गयी एक कविता मे कवि 'विस्तृत गगन उजागर' की ओर संकेत करता है जिसमे स्वतन्त्रता की आशा किरण जैसे फूट गयी हो। कवि भविष्य के प्रति कितना आस्थावान है। समस्त विश्व मे भारत अकेला गुलाम राष्ट्र था जो इतना विशाल एवं पूर्व गौरवगरिमायुक्त था। जव कि समस्त विश्व

आजादी के तराने गा रहा हो कवि अपने राष्ट्र मे दासता का करुण क्रन्दन सुनना नहीं चाहता। वह गा उठता है—

मैं निज काल कोठरी में हूँ, औ चाँदनी खिली है वाहर
इधर अंधेरा फैल रहा है, फैला उधर प्रकाश अमाहर
क्यों मानूँ कि ध्वान्त अविजित है जब है विस्तृत गगन उजागर
लो मेरे खपरैलो से भी एक किरण हँसती छन आई
उमड पडी यह शिशिर जुन्हाई।

सन् १९४२ के जन आन्दोलन के पश्चात् सन् १९४५ मे देश के नेताओ की रिहाई हुई। और समझौता वार्ता के पश्चात् सन् १९४७ में भारत स्वतन्त्र हुआ। इस कविता का रचना काल सन् १९४४ है। नवीन का यह आशावादी दृष्टिकोण सर्वथा स्वाभाविक और भावी सफलता का सफल सन्देश सिद्ध हुआ।

विश्व मे व्याप्त अमाहर प्रकाश मे कवि अपने राष्ट्र की भी मंगल ज्योत्स्ना के दर्शन करता है। उसके आशावादी रूप से स्वतः परिलक्षित होता है कि वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति मे सन्नद्ध है। उसके लिये वह बीते दिनों की यातनाओ को भूल जाता है और युग परिवर्तन के क्रान्ति संदेश का तूर्य्य नाद प्रसारित करता है। लक्ष्य प्राप्ति जीवनका एक महान व्रत है। उसके लिये सतत् जागरुक नवीन का कवि निरन्तर ध्येय मार्ग पर अविराम गति से बढ़ते रहने की प्रेरणा देता है।

मास वर्ष की गिनती क्यों हो, वहाँ, जहाँ मन्वन्तर जूझे।
युग परिवर्तन करने वाले जीवन, वर्षो को क्या बूझे।

सचमुच भारतीय स्वतन्त्रता एक युग परिवर्तन ही है। उसे प्राप्त करने के लिये जो मास, वर्ष लगें उनकी गणना ही क्या। इस प्रकार के संदेशो से कवि वर्तमान साधना को बल प्रदान करता है और समस्त देश को प्रगति के पथ पर शक्ति के सबल चरण बढाने को प्रेरित करता है। वह ध्येय प्राप्ति के लिये आतुर है और इस आतुरता मे पथ के काँटे भी उसे फूल से लगते है।

हम विद्रोही कहो हमें क्यों, अपने मग के कंटक सूर्भे
हमको चलना है हमको क्या हो अँधियारी या कि जुन्हाई

वास्तव में कवि राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत भविष्य के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता हुआ दिखाई पड़ता है। नवीन की राष्ट्रीय विचार धारा सर्वथा मौलिक, मनौवैज्ञानिक एवं काल तथा परिस्थिति के साथ है। समय की उपयुक्तता में ही चेतना का व्यापक संदेश मंगलकारी होता है। कवि के हृदय में निरन्तर चाँदनी छाई हुई है। वह दुःखों में भी मुस्कराता है। और पालक तथा घालक प्रत्येक परिस्थिति में कार्य रत रहने का ही संदेश देता है, जब तक अभीष्ट मिल न जाय।

जीवन की समस्त सार्थकता ध्येय प्राप्ति में ही निहित है। यह देखते हुये भी कहीं कहीं राष्ट्रीय भावनाओं के प्रकरण में हम नवीन को विवश पाते हैं।

उनकी क्या होली दीवाली, उनके क्या त्यौहार।
जिनने निज मस्तक पर ओढ़ा, जन विप्लव का भार।
कर्म पथ है खाड़े की धार॥

वस्तुतः कर्म पथ खडग की धार ही है। इन पंक्तियों मे कवि का विद्रोही स्वरूप निखर आया है। जन विप्लव का नायक कवि मदिर त्यौहारों की मिठास को कर्म भार की त्रेवसी से कडुवा नहीं करना चाहता। परन्तु अपनी मनोव्यथाओं को दवा कर भी, अपने अरमानों की होली जला कर भी कवि होली और दीवाली से उदासीन हो जाता है, क्योकि उसका कर्मण्य जीवन शायद इन मादक और नयनाभिराम दृश्यो से शिथिल पड जाय। वह अपने प्राणों के दीप जला कर भी उस पथ को आलोकित करना चाहता है, जो राष्ट्र देवता के पुनीत मन्दिर तक गया है और फिर वह उसके श्री चरणों मे श्रद्धा के फूल विखेर कर जीवन धन्य कर लेने का आकांक्षी हो उठता है।

नवीनजी जीवन की विकरालता पर भी तर्क करते हुए दिखाई पडते हैं। समस्त संसार आसुरी प्रवृत्ति की क्रूर भावनाओं से ओतप्रोत ऊजड प्रदेश की वीरान वस्तियों सा जान पड़ता है। वे दानवी भावनाओं के प्रसरण का कारण ढूँढना चाहते हैं।

इतनी रस शून्यता दानवी, जग जीवन में कैसे आई।
ज्वालामुखियो की ये लपटें, जगमग मे किसने भड़काई।

कवि तप्त वसुन्धरा पर एक क्षण भी खड़ा रहना नहीं चाहता। वह चाहता है कि पृथ्वी तल से अहंकार और संकुचित भावनाओंका लोप हो जाय। जन-जन के जीवन मे सौहार्द्र, स्नेह एवं उदारता का उदय हो। यही एकमात्र उसकी अभिलाषा है :—

फैले अनहंकार भावना, मिटे संकुचित सीमा अन्तर'।

जहाँ एक ओर नवीनजी ने क्रान्ति का संदेश दिया है और जन विप्लव की मूर्त्त साधनाको चित्रित किया है वहीं दूसरी ओर उन्होंने देश में सरस-रस-प्लावन की मंगल कामना भी की है। वे मंगल-वाची ब्राह्मण की भाँति समस्त संसार के शिव के हेतु अपने अन्तस्तल की पूरी श्रद्धा बटोर कर एक साथ ही निकाल देना चाहते हैं।

सदा प्रेम घन फुहियाँ वरसें, जग रोमावलियाँ सिहरें।
नव सनेह रस भीने भीने, दिशि दिशि सब जग जन विहरें।

विश्व मे समस्त मागलिक विधानोंका जन्म हो, जीवन निर्भ्रान्त, सुखी एवं सम्पन्न हो और 'करुणामयी हो उठे सहसा जन विचार की परिपाटी' यही उनकी अभिलापा है।

मनुष्य की उदारता ही जीवन मे तत्व चिन्तामणि की सुवोध पृष्ठभूमि वने जिसे देख कर स्रष्टा भी अपनी सृष्टि पर गर्व कर उठे :—

इतनी विस्तृत, इतनी चौडी हो इस मानव की छाती।
जिसे निरख कर स्वयं सृजन भी कहे लखो मेरी थाती॥

इसके लिये वह आत्मवलिदान एवं आत्मार्पण की उदार मनोवृत्तियों को जगाता है और अपने एकमात्र प्रयास से अपनी अन्त-

रात्मा का समस्त रस उँडेल कर विश्व-वाटिका को हरा-भरा देखना चाहता है। कवि का कर्मठ जीवन शब्द शब्द में बोलता सा जान पड़ता है। श्री नवीन का यह अभिनव क्रान्तदर्शी सन्देश जिसमें स्वयं को मिटाकर विश्व रक्षण की भावना निहित है, परम चेतना-मय एवं श्लाघनीय है।

आज शिंजिनी आत्मार्पण की, चढ जाये जीवन अजगव पर।
उर्ध्व लक्ष्य वेधन हित छूटें, बलिदानों के नित नव नव शर।
हो शवलित वसुधा अलम्बुषा, मुदमय नृत्य कर उठे थर थर।
इस सूखे अग जग मरुथल में, ढरक बहो मेरे रस निर्झर॥

नवीन का हृदय भावनापूर्ण है। वह अनेकानेक भावनाओं का नीड़ है। वस्तुतः कवि भावुक पहले है और राष्ट्रवादी बाद मे। कवि नवीन की भावुकता मासल कही जाती है। परन्तु वह उसकी धारा में अपने को छोड कर निश्चेष्ट नहीं हो जाता। वह तो जीवन के पहलुओंका कायल है। मांसल वासना की धारा मे बहते बहते अचानक उसे अपने गलित राष्ट्र का ध्यान आता है और वह तिलमिला कर कह उठता है:—

आज जब कि घूम रहा सर्वनाश चक्र घूर्ण।
आजजब कि ममता के भाव हुये चूर्ण चूर्ण।
ऐसे क्षण क्योंकर हो, स्नेह साधना प्रपूर्ण।
ऐसे क्षण हम कैसे, गायें फिर प्रेम गान।
शत शत चुम्बन से है, धूमिल तव चित्र प्राण॥

सन् १९४३ ई० की बात है। पराधीनता की निर्मम बेडियाँ नये सिरे से कस दी गयी थीं। भारत पर सर्वनाश का महा चक्र घूम रहा था। जीवन की स्वाभाविक गति रुद्ध एवं कुण्ठित थी, भावनायें मौन थीं तथा साधना की पवित्र धारा मे गहरा गतिरोध आ गया था। जब समस्त देश आक्रान्त होकर एक अजीब सी घुटन में दम तोड रहा था, उस अवस्था मे कवि नवीन प्रेमी-प्रेमिका

की रीझ-खीझ, मान, मनुहार को तिलाञ्जलि दे जीवन की भयंकर कशमकश में यह कहते हुए सुनाई पड़ते है :—

तिनकों की क्या बिसात, जब मन्दर हों विचलित।
मान व्यक्ति का कितना, जब हों सब देश दलित।
ऐसे क्षण कैसे हो स्नेह कलित प्रेम फलित।
अमिय कहाँ, जब कि यहाँ, होता है गरल पान।
शत शत चुम्बन से है, धूमिल तब चित्र प्राण॥

वस्तुतः यह कवि की विवशता नहीं, वरन उसकी शाश्वत भावनाओं का उदीयमान रूप है। कवि प्रेम के पालने में तभी झूलना चाहता है जब राष्ट्र समृद्ध हो, जीवन पूर्ण हो और प्रणय की मधुर भूमिका प्रशस्त कर रहा हो, परन्तु जब देश वेदना से कराह रहा हो, जब संक्रान्ति की घड़ी हो तब तो सचमुच 'ऐसे क्षण कैसे हो स्नेह कलित प्रेम फलित'। यह कवि का सर्वदर्शी एवं सर्वप्रिय राष्ट्रवादी स्वरूप है, जिसकी वेदी पर अन्यकोमल भावनाओं की बलि हो गयी।

कवि अतीतके आलोक में भविष्य की ग्रन्थियाँ सुलझाने की चेष्टा करता हुआ भी दिखाई देता है। वर्तमान की घोर तमिस्रासे ऊब कर वह मंगल प्रभात का दर्शन चाहता है और अपनी चिर निद्रामयी काली रातका विहान खोजता है। इस काली भयानक रातमें वह बीते हुये प्रभातकी स्मृतियोंमे विभोर हो जाता है। एवं उन्हींके बलपर आगे आने वाली रश्मि रेखाओंकी कल्पना करता है। भारतका गौरवशाली अतीत कवि की स्मृति को उद्भासित करता है। वर्तमान की काल कुहा उसे हू हू करती हुई सुनाई पडती है, परन्तु वह आशान्वित है अपने जागरण की प्रभाती देखने के लिये। उसके लिये उसके पास बल है, चेतना है और है अक्षय विश्वास जिनके ही आधार पर वह कह उठता है :-

दूर नहीं है अरे निकट ही, वह प्रकाशमय मंगलमय क्षण।
और सदा ही तो होता है, अरुणा और तमिस्रा का रण।

जो डूबे हैं आज तिमिर में, हुलसेंगे वे ही रज कण कण।
ये भूधर, यह भू, यह अम्बर, सब फिर पायेंगे अपनापन॥

पराधीन धरती स्वतन्त्र होगी। हमारी गंगा हमारी होगी, हमारा हिमालय हमारा होगा, देश का कण कण स्वतंत्र होगा, प्रत्येक अणु परमाणु अपनत्व की भावना से भर उठेगा और समस्त चराचर प्राणमयी, ओजमयी एवं अधिकारमयी स्वतंत्रता की भित्ति पर खडा होकर परमानन्द का अनुभव करेगा।

देश के स्वर्णिम अतीत के पृष्ठों को कवि हमारे सामने प्रस्तुत करता है।

भूल गये क्या प्रथम प्रात का वह उल्लास लास वह वैभव।
वह अलिगणकी गुन-गुन-गुन-गुन, वे उत्फुल्लित विकसित कैरव।
तुम भूले क्या मुदित प्रभाती, गायन रत द्विज दल का कलरव।
याद करो पथमा ऊषा के अनिलाचल की रसमय सिहरन।
स्मरण करो, निज विस्मरणोंका, करो आज गहरे अवगाहन॥

कवि सोई हुई जनता को जनार्दन बनने की प्रेरणा देता है। वह युग की संदिग्ध अवस्था का निराकरण करना चाहता है। राष्ट्र को चेतना का युगान्तकारी, परिवर्तनशील सन्देश देता हुआ वह उसे सुसुप्ति से जागृति की ओर उन्मुख करता है।

'स्मरण करो निज विस्मरणों का करो आज गहरे अवगाहन' प्रमादपूर्ण जीवन का अन्त हो, देश अपनी पुरातन गौरवशालिनी सास्कृतिक परम्परा का स्मरण करे। अतीत, मानव जीवन के पथ प्रदर्शन हेतु दीपस्तम्भ बने। भविष्य का कल्याण इसी मे कवि देखता है।

नवीन का कवि सर्वथा समर्थ है। वह सब कुछ सह लेने का साहस रखता है। जीवन की भयंकर विभीषिकायें चाहे शतशः ज्वालामुखियों के उद्गार से भी भयानक बन जांय परन्तु वह अपनी आशा को छोड नहीं सकता।

फिर आयेगी ऊषा हँसती, फिर होगा विहान चिर सुन्दर।
फिर से नव भैरवी छिड़ेगी, फिर होगी पंखो की फर फर।
फिर से अरुण छटा छायेगी, फिर होगा द्रुमदल का मर्मर।
फिर से समुद वहेगा सन् सन्, सनन् सनन् जागरण समीरण।
लख अम्बर में तमावरण घन क्षण क्षण क्यों अकुलाएँ लोचन॥

जीवन का सत्य ही शिव है और वही सुन्दर भी। भारतीय स्वतन्त्रता का जीवन महान शिव है। वह जीवन का सुन्दर स्वरूप है, वही चिर सत्य है। कवि अरुणिम विचारोंमें तन्मय राग एवं अनुराग की गुलाबी लाली किये देवी स्वतंत्रता की वाट जोह रहा है। ऊषा एवं विहान, उन्मुक्त पंखों की फड़फड़ाहट, उसमे भैरवी का मधुर राग जैसे एक साथ किसी चिरमंगल का सन्देश दे रहे हों।

पराधीनता की भयावनी काली रात महाकाल के महापेट मे समाहित होगी। रोम रोम मुक्ति प्रभात के उन्मुक्त पवन के स्पर्श से पुलकित हो उठेगा। निदाव के वाद वसंत आयेगा, पत्रों का ताल ताल थिरक उठेगा, वृक्ष गा उठेंगे एवं वल्लरिया शोखी से उनके शिर चढ़ जायेंगी। चारो ओर आजादी के तराने छिड़े होंगे और धरती का कण कण मुस्कराता होगा फिर जहाँ ऐसे मांगलिक विधानों का जन्म होने वाला हो वहाँ 'लख अम्बर मे तमावरण घन क्षण क्षण क्यों अकुलाएँ लोचन।' यह आशावादिता ही नवीन के काव्य साहित्य की विशेषता है।

'चक्रवत् परिवर्त्तन्ते दुःखानि सुखानि च'। धीरे-धीरे समय वदला परिस्थितियाँ वदली और युग वदल गया। भारत के करोड़ो नर-नारियोंकी तपःपूत आशा फलवती होनेके लिये ललक उठी। कारागार खाली कर दिये गये और स्वतन्त्रता के दीवानो को मुक्त कर दिया गया। कणशः तथा क्षणशःपरतन्त्रता की उस काल रात्रिका अवसान हुआ और १५ अगस्त सन् '४७ को स्वतन्त्रता की ऊषा गुलाव सी खिल आई।

जन मन गण के अधिनायक की जयजयकार हुई। हमने अपना

राज्य सम्हाला और शासनकी बागडोर अपने हाथोंमे ले ली। सदियों की परतन्त्रतासे राष्ट्रका मर्म, आहत हो चुका था। देश में भयंकर दैन्य एवं असन्तोष व्याप्त हो चला था। अंग्रेजों की कूटनीति का प्रत्यक्ष प्रभाव बहुत ही गहरा पड चुका था। लोगों में पारस्परिक भेदभाव पूर्णरूपसे विद्यमान था। समाजकी दशा शोचनीय हो चली थी और गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों मे ही—

खेती न किसान को न भिखारी को न भीख बलि,
वनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोचवस,
कहैं एक एकन सों कहाँ जाई का करी।
बेद हूँ पुरान कही, लोक हू बिलोकियत,
सांकरे सबै पै राम रावरे कृपा करी।
दारिद दसानन दवाई दुनी दीनवन्धु,
दुरित दहन देखि तुलसी हहाकरी।

इस प्रकार का समाज हो गया था।

परिस्थितियों से ऊब कर एवं स्वयं उसका समाधान प्रस्तुत न कर सकने के कारण कवि अपने इष्ट देव से उसके शमन की प्रार्थना करता है। राष्ट्रीय जीवन में प्रशस्तिगान का भी एक महत्वपूर्ण भाग है। 'दारिद दसानन' से छुटकारा पाने के लिये तुलसी ने राम को पुकारा। मुगल साम्राज्य की विभीषिका जब अपने अत्याचारों की सीमा का अतिक्रमण करने लगी तो भूषण को 'तेज तिमि अंस पर कान्ह जिमि कंस पर, त्यों मलेच्छ बंस पर शेर शिवराज है', कहने की आवश्यकता पड़ी। आज जब हम परतन्त्र थे तो देश-भक्ति की प्राथमिक अभिव्यक्ति हमारे नेताओ की प्रशंसा के रूप मे ही प्रकट हुई। हमने महात्मा गाधी की अभ्यर्थना की .—

भूखे नंगे दीन बन्धुओ पर लख अत्याचार
दीन बन्धु की आँखों मे फूटी करुणा की धार
ईसा चढा क्रूस पर फिर से प्रभु उसका कल्याण करे

खेल रहा अपने प्राणों पर, प्रभु दधीचि का त्राण धरे।
धो दे भारत का कलंक, तेरी आँखों का पानी।
लिख दे यह वलिदान, हमारी प्रायश्चित्त कहानी॥

भारत स्वतन्त्र भी हो गया, परन्तु जीवन की स्वाभाविक गति अभी तक न आ पाई। अभी तक हमने मानवता का अभिषेक नहीं किया। हम में वैषम्य है, अन्तर है, एक प्रकार का छोटे बड़े का भाव है। अभी तक तो हम स्वयं ही अपने नहीं थे, फिर समता और समानता क्या। किन्तु आज हम अपने देश में हैं, अपने राज्य में हैं। आज जीवन की प्रत्येक गरिमा हमें प्राप्त है। फिर यह वैषम्य क्यों? दो जनों के जीवन में इतनी गहरी खाई क्यों? हमने तो "ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्या जगत" का धर्म सीखा था। परमेश्वर की पूजा यानी दीनों की सेवा—यही तो उपनिषद् कहता है।

आज स्वतन्त्रता की झंझा तो शान्त है। किन्तु मानवता की हलचल बहुत ही उग्र रूप धारण करती जा रही है। मानवता हथौड़े से नहीं गढ़ी जा सकती। रूस की लाल झंडी नृशंसता की गाड़ी नहीं रोक सकती। उसे तो हम रोक सकते हैं मानवता समस्त विश्व को हमने दी थी। वह आज भी हमारे पास है और हम अब उसे बाँटने चल पड़े हैं।

आज की मानवता के अग्रदूत विनोवा हमारी प्रबल राष्ट्रीयता की संभूत चेतना को सजीव कर रहे हैं। नवीन जी विनोवा का स्वागत करते हैं। अपनी पुस्तक 'विनोवा स्तवन' की भूमिका में वे लिखते हैं:—

'यह हमारे देश का सौभाग्य, यह हमारा अहोभाग्य कि हमारे बीच आजकल सन्त विनोवा विचरण कर रहे हैं। विनोवा का यह विश्व भ्रमण, उनका यह पांव पांव परिव्रजन हमारे देश की अतीत परिव्राजक परिपाटीका पुनरुद्धार है। और इतना ही नहीं कि यह उस परम्परा का पुनरुद्धार मात्र ही हो, उनका यह दैनंदिन **मार्ग भ्रमण**

उस पुरातन, चरैवेति, चरैवेति, चलते जाओ, चलते जाओ के आदेश का अभिनव विकास भी है।'

लेखक तो यह समझता है कि गाँधी जिस कार्य को छोड़ गये आज बिनोवा उसी को लेकर आगे बढ रहे हैं। बिनोवा ने देश की निर्बलता देखी और दीन जनों की करुण मूर्त्तियों मे मुसकान भरने के लिये तत्पर हो गये। 'आज हमारे राष्ट्र की सहज बुद्धि गाधी और बिनोवा में एकत्व के दर्शन करती है।' विनोवा 'अन्नं वै प्राणाः' के उपनिषद वाक्य की महिमा समझते हैं और तभी धरती का समान वितरण उन्हें प्रिय है।

विनोवा की यह सहज राष्ट्रप्रियता, राष्ट्रीय भावनाओ के अमर गायक नवीन को आकर्षित किये विना न रह सकी। फलस्वरूप 'विनोवा स्तवन' की रचना हुई। नवीनजी के बिनोवा 'मन्त्र द्रष्टा ऋषि हैं, भूदान यज्ञ के होता है और निश्छल वामन भगवान हैं'। यही नहीं नवीन तोकहते हैं :—

गुण निधान हे। नित अकाम तुम,
मानवता की एक उड़ान।

बिनोवा मानवता की एक उडान है, वे मानवी क्रान्ति की झंझा हैं। वे मानवता के कल्याण है।

देश की बुरी दशा देखकर नवीन के हृदय का 'स्थैर्य' डिग गया है। परन्तु साथ ही विनोवा की मानवी क्रांति की झंझा उन्हें आशा प्रदान करती है, वे कहते हैं '—

मानव अवलोको यह आया,
लो देखो यह फिर आया।
तीव्र पिपासाकुल जगनभ मे,
श्याम मेघ यह घिर आया।
अविश्वासमय मनो भूमि मे,
सुविश्वास के तृण लहरे।

मृणमय मर्त्य लोक में फिर से,
चिर चेतन केतन फहरे।

विनोवा के गुणगान में नवीन मानो मानवता का राग गा रहे हैं। तुलसी ने राम को गाया क्योंकि राम ने मानवता को मुक्त किया था। कृष्ण ने मानवता की स्थापना की थी। गांधी मानवता पर मर मिटा, ईसा मानवता को वलि हो गया। बुद्ध मानवता को प्यार करता था। विनोवा आज उसी मानवता की चिरविजयिनी वैजयन्ती लेकर हमारे सुराष्ट्र की नींव को मजबूत करने जा रहा है। नवीन चुप कैसे रह सकते है। आज के इस आपाधापी के युग में विनोवा करुणा की एक लकीर है।

जव संसार श्मशान वन चला,
तेरे मेरे के रण से।
होने लगी क्रीत पृथ्वी जव,
चांदी सोने के पण से।

उस क्षण शांत सन्त, दृष्टा, ऋषि,
तज ऐकान्तिक ब्रह्मानन्द,
स्वयं वँध गया जन कल्याणी,
हिय रानी करुणा के फन्द,

हुलसी है मेदिनी, स्वेदिनी,
वेपथुमती, रसा सरसा,
पूर्व स्मरण से आज वह रहा
उसके हिय में निर्झर-सा।

आज धरती विनोवा की करुणा से आप्लावित हो रही है। ऐसे समय में नवीन राष्ट्र को चेतना का युगान्तकारी सन्देश दे रहे हैं :—

विष को निज घट-घट मे भरकर
अमिय धार की चाह करो ?

समझो अपने को निर्माता
जब तुम निज गृह-दाह करो ?
पारस्परिक विरोधों से यों
भर-भर कर जीवन अपना-
देख रहे हो शुभ भविष्य का
क्या ही उद्भ्रामक सपना।

सुन लो सन्त बचन अब, जिनसे।
गूँज चुके है मन्वन्तर,
जिनने थर थर कँपा दिये हैं
अयुत युगों के अभ्यन्तर,
यह वाणी, जिससे सिहरी है
मानवता की शत शतिया,
हाँ जिसने परिवर्तित की हैं
मनु-वंशज गण की मतियाँ
सावधान, सुन, लो ओ मानव,
फिर से गूँजी वह वाणी,
अविच्छिन्न इतिहास लडी की
कड़ी भारती कल्याणी।

विनोवा की वाणी ऐतिहासिक श्रृंखलाओं की कडी है। उसमें जीवन की गहनतम अभिव्यञ्जना साकार होती जान पड़ती है। नवीनजी सामाजिक वैमनस्यों को समूल नष्ट कर ऋषि की अमृत वारिधारा मे निमग्न होने का सन्देश देते हैं। इससे मानवता निखरेगी, देश की निर्वलता नष्ट होगी, राष्ट्र सम्पन्न होगा और जीवन को गति मिलेगी। विनोवा के अनुसरण मे कवि को एक लक्ष्य प्राप्ति की झलक दिखाई देती है। इसीलिए वह आश्वस्त होकर सन्त के पीछे-पीछे चल पड़ता है। वह हमसे भी कहता है '—

भर विश्वास हृदय में अपने
तज शैथिल्य सवेग वढो

ओ जन तुम अपने ही कर से,
निज भविष्य निर्भीक गढ़ो।

सचमुच मनुष्य स्वयं अपना विधाता है। वह अपना सर्वनाश और अपना नव निर्माण सब कुछ कर सकता है। आज की इस जीर्ण सामाजिक विषमता को भी मनुष्य एक ही धक्के में समाप्त कर सकता है। उसके लिये विनोवा मानवता की मशाल लिये राह दिखा रहे हैं। भारतीय संस्कृति के अग्रदूत का अनुसरण कवि को प्रिय है और वह कह उठता है :—

बर्बरता के चक्रव्यूह मे,
क्यो मानवता फँसे मरे।
क्यों डूबे वह शोणित नद मे,
सन्त नाव चढ क्यो न तरे।

वह आगे भी कहता है :—

आज जन संसदिपधारा, छोड़ ब्रह्मानन्द।
यह विनोवा तोड़ने को सब हमारे बन्ध।

भारत माता की बेड़ियाँ तोडकर कवि सामाजिक वैषम्य, दीनता, दुख और विवशता का गढ भी ढहा देना चाहता है। वह निर्भ्रान्त, निर्द्वन्द्व, सुखी और सम्पन्न जीवन देखना चाहता है। उसे पाने के लिये वह हमे सक्रिय बनने का आदेश देता है :—

तुम ओ धरती के रिंगण गति रत पुत्रो,
उग आयेंगे जब पंख तुम्हारे मन मे,—
तब अम्बर विचरण की लालसा सहज ही
भर जायेगी तब जीवन के क्षण क्षण में।

उन्मुक्त आकाश मे उड़ने की प्रेरणा कवि दे रहा है। कुत्सित मनोवृत्तियों का त्याग ही इस अम्बर विचरण की उदार भावना का सृजन कर सकता है। देश का अन्धकार कवि को मिटता सा लग रहा है क्योंकि वह सोचता है :—

जग चुकी है वर्तिका चिरकाय तापस की
कँप रही है गहन अँधियारी अमावस की

तपस्वी की पूत काया का आलोक हमारी निश्चेष्टता को मिटाने के लिये ही उदित हुआ है। हमें अपनी गाँठें सुलझानेके लिये अन्यका मुँह नहीं देखना है। हम स्वयं पूर्ण हैं और अपनी कमी अपने ही कर्त्तव्यों से पूरी कर सकते है। विनोवा हमारी राष्ट्रीय भावनाओं के प्रतीक हैं। इसीलिये वे नवीन के पूज्य हैं :—

सन्त रम गया जहाँ, लग गया वहाँ मनुज का मेला।
मेले मे भी सन्त विनोवा रहता सदा अकेला।
पूर्ण कर्म भाजन मे, इसने चरम अकर्म उँडेला।
गाया दीपक राग सन्त ने फिर से हुआ उजेला।

लो आ रहा प्रकाश तुम्हारे घर से तव आगन से
फिर कृत कृत्य हुई मानवता महाप्राण के स्वन से।

गायन्ति देवाः किलगीत कानि,
धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पद हेतु भूते,
भवन्ति भूयः पुरुषा' सुरत्वात्।

एक समय था जब भारत की धरती पर जन्म लेने के लिये देवता भी ललचते थे। रामकृष्ण की वही रागमयी धारा आसुरी सुरा से एक दीर्घकाल तक सिक्त रही। थोड़े दिन हुए इसके जीवन मे पुनः एक खुली वयार वही। लेकिन उस हवा में मानवता की सुगंधि नहीं अपितु भग्नावशेषों का उडता हुआ धुवाँ दिखाई पडा। हम आज अगरु सुगन्ध से युग युग की चिरौंध को मिटा देना चाहते हैं। नवीनजीको सब कुछ होते हुये भी इस धरती पर सुधा का स्रोत नहीं दिखाई देता। किन्तु कवि की आस्था इतनी प्रबल है कि वह इस धरती को स्वर्ग से भी अधिक सुखद और रम्य बना देगी।

हमें खींच कर स्वर्ग,
कहीं यदि उसका ठौर ठिकाना है,
इस धरती पर लाना है।

बनना है हमको निज स्वामी,
ऊर्ध्व वृत्ति सत् चित् अनुगामी,
वसुधा सुधा सिंचिता करके हमें अमर फल खाना है।
जो कि देव दुर्लभ है, उसको इस धरती पर लाना है।

इसके लिये कवि के पास अतीव बल है। वह कुत्सित मनोवृत्तियों का सर्वनाश चाहता है। इनके सर्वनाश में ही नव निर्माण जैसे छिपा पड़ा हो।

सिहर उठें हम एक बार बस
तज दें निम्न वृत्तियों का रस
फेंकें कंचुकिवत् वह वल्कल, जो कि अतीव पुराना है।
तब हम देखेंगे कि हमें कुछ नहीं यहाँ पर लाना है।

देवत्व वहीं है जहाँ मनुष्य मे मानवता की पूर्ण परिणति हो। नवीन के लिये तो यह धरती ही स्वर्ग है, यदि इसमे ओछी भावनाये न पलती हो, यदि इसमें कुत्सित मनोवृत्तियों का निवास न हो। नवीन पूर्ण मानव है। उनका हृदय कितना विशाल है ? उनमें मानवता जैसे कूट-कूट कर भरी हुई है।

———

"कितना मधु मिश्रित रस है
देखो मेरी तड़पन में"[1]



"सहस्रो वर्षों से स्त्री पुरुष एक दूसरे से प्रेम करते चले आये है। प्रेम की प्रेरणा से विविध प्रकार के असंख्य भावो का आस्वादन इनके जीवन मे विविधता लाता रहा है। प्रेम की ही प्रेरणा से स्त्री-पुरुष अपने जीवन के प्रभात मे साथ साथ पुलकित हुये और इसी के प्रभाव से सन्ध्या की उदासी और निराशा के अन्धकार में पग वढाते जीवन पथ पर चलते रहे हैं। प्रेम के ही कारण मनुष्य खिलती हुई कलियों देख कर हँसा और विखरी हुई औस की वूँदों पर रो पड़ा। कवि सच्चे भावावेश मे अपने हृदय के गान द्वारा प्रेम के आनंद और उसकी वेदना के संदेश लोगों तक पहुँचाते रहे हैं।"[2]

वर्त्तमान हिन्दी साहित्य की प्रेम-कविता, रीतिकालीन श्रृङ्गारी कवितासे अनेक अंशोंमे भिन्न है। रीतिकाल की कविताओ का लक्ष्य जहाँ सौन्दर्य निरूपण के सहयोग से श्रृङ्गार-भावना के पोपण की परिपाटी का निर्वाह था वहीं आज की हिन्दी कविता मे हम देखते हैं कि श्रृङ्गार के वाह्य रूपों की अपेक्षा कवि की दृष्टि आभ्यन्तरिक मनोविकारों के प्रति अधिक आकृष्ट है।

रीतिकालीन श्रृङ्गार-भावना का रूप द्विवेदी युग मे तीव्रगति से वदलता हुआ दीख पडता है। इसके परिणाम स्वरूप तथा नवीन जीवन की आवश्यकताओं के वश इस काल के अधिकाश कवियो का दृष्टिकोण रसिकता की ओर से उदासीन सा हो गया। परन्तु 'मानव हृदय की इस आदि चेतना का जादू इस काल मे भी सर चढ़कर वोलता ही रहा।'

---

१ स्व० सुभद्रा कुमारी चौहान
२ डॉ केसरी नारायण शुक्ल (आधुनिक काव्यधारा)

आधुनिक हिन्दी कवियोंने प्रेमकी अभिव्यंजनामे अपना कुछ नवीन अवदान भले ही किया हो, किन्तु उसकी पीड़ा और उसके आनन्दका अनुभव इन्हें भी होना नैसर्गिक ही था। द्विवेदी युगके कवियोंने प्रेमके गीत चाहे उनने अधिक न गाये हों—लेकिन प्रेम की मार्मिकता का अनुभव करते हुये वे अवश्य देखे जाते है। गुप्त जी ने भी प्रणय की महिमा का पाठ किया है।

मोद प्रद प्रणय से जिनके विशाल
होते विभूपित उर - स्थल सर्वकाल
वे ही मनुष्य जगती तल में प्रधान हैं
जानते प्रणय की महिमा महान है।

गोपाल शरण सिंह ने तो प्रेम को जीवन का सार ही समझा है।

वन जाओ तुम प्रेम, हमारे,
मंजु गले का हार।
तन धन जीवन जो कुछ चाहो,
दें हम तुझ पर वार।
तुमको पाकर क्यों न भला,
हम हो जावेंगे धन्य।
सच कहते हैं तुम्हें मानते,
हम जीवन का सार।

अपने आदर्श और लक्ष्य में विशेपकर नारी के प्रति आधुनिक हिन्दी कविता का कवि पहले की अपेक्षा कुछ अधिक उदार तथा असंकीर्ण दृष्टि रखता है। उसकी निगाह केवल स्थूल रूप तक ही सीमित न रहकर नारी के उदात्त आन्तरिक स्वरूप को भी देखना चाहती है। यद्यपि अब तक का 'नवीन' जी का जो स्वरूप हमने हिन्दी कविता में देखा है—वह युग की पुकार को ही झंकृत करता रहा है किन्तु उनका कवि-हृदय भी जब अपनी उमंग मे **मुखरित** होकर प्रेमोन्मत्त हुआ और उसी तरंग में वे गा उठे तो **उसमें**

इस युग की प्रेमभावना युग की शृंखला मे बँधी हुई एक पुष्ट कड़ी के रूप मे व्यक्त हुई।

जीवन की अन्धकारमयी रजनी मे भटकते हुये 'नवीन' प्रेमिका से यह आकाक्षा करते है कि वह उनके जीवन पथ को अपनी दीप्ति से आलोकित कर दे।

दीप रहित जीवन रजनी में,
भटक रहा कब से सजनी मै।
भूल गया हूँ अपनी नगरी,
कुहू व्याप्त है सारी डगरी।
अपनी दीप शिखा की किरणें,
जाने दो उस पथ की ओर।
जहाँ भ्रान्त सा ढूढ रहा हूँ,
प्रतिमे! तव अंचल का छोर।

नवीन के प्रेम गीत सौंदर्य से पूर्ण हैं।

जीवन में विविधता है। इसमे रोटी-दाल, सुख-दु:ख, सौन्दर्य और कुरूपता सभी कुछ है। कवि भी वास्तविक जीवन के ही चित्र अंकित करता है, लेकिन उसकी कला असुन्दर को भी सौन्दर्य का वरदान देकर ही रहती है। यदि कवि भी अपनी कला की सीमा केवल 'रोटी के गान' को ही मान वैठे तो वह काव्य-जगत की घोर विडम्बना होगी। गरीवी और रोटी के गीत गाने के साथ साथ कवि को जीवन के सौन्दर्य की ओर भी दृष्टि डालनी चाहिये। ऐसा न करने से सत्य की हत्या होगी।

मानव की ज्ञान उपलब्धि इन्द्रियोपकरण जन्य है—इस भावना एवं दर्शन से इन पक्तियों का लेखक सहमत नहीं। मानव की अतृप्त पिपासा केवल भौतिक अभाव जन्य ही नहीं है। उसमे वेदना और टीस का समावेश भौतिक उपकरणो की अप्राप्ति पर नहीं अपितु किसी अन्य मानवोचित कार्य कारण आधार पर स्थिर है। निरी सुख की लालसा से मनुष्य कर्मरत नहीं होता, उस कर्मठ

जीवन की भूमिका मे त्याग, 'अलख की टोह' सेवा एवं सदाचार की भावना भी निहित है। मनुष्य का अपना एक मानवीय रूप है जो कलात्मक भावनाओं की उपत्यका में विश्राम करता है। मानव केवल वादो के रक्षण और पोपण के लिये नहीं वना है। 'नवीन' जीके ही ये शब्द—'मानव मानव है, वह केवल सामन्तवाद, पूजीवाद, वर्गवाद, भौतिक वाद आदिका मुरव्वा मात्र नहीं', वड़े ही कटु किन्तु ध्रुव सत्य का प्रतिपादन करते हैं।

किसी युग की विचारधारा के मूल भूत मानवोचित जीवन के सत्यों में परिवर्तन नहीं हुआ करता। वर्ग भेदों से ऊपर उठ जाने पर, सत्ताओं के नष्ट हो जाने पर, या समस्त क्रान्ति विप्लव कारिणी भावनाओं के ऊहापोह में भी मानव की एक अपनी सत्ता होती है जिसका नाश नहीं होता।

वैज्ञानिक युग का आरम्भ हमे मानव सुलभ मनोवैज्ञानिक भावनाओं एवं उनको हृदयंगम करने की प्रेरणाओं से वंचित नहीं कर सकता। उदाहरणार्थ जैसा कहा जाता है रूस मे वर्ग भेद नहीं है। कहा जाता है वहाँ समता एवं समानताका राज्य है। तो क्या वहाँ का मानव किसी इतर देश केमानव से भिन्न है। क्या यह भी माना जा सकता है कि वहाँ के आज के मानव-जीवन की मानवोचित परिपक्व मानस की तथा उसकी मूल-भूत रागात्मक समस्याओं का भी अन्त हो चुका है? क्या वहाँ प्रेम शृङ्गार या वासना के वे ही रूप नहीं जो अन्यत्र हैं। क्या वहाँ की विरहिणी अपने प्रियतम की वाट अधीर हो कर नहीं जोहती? निस्सन्देह वहाँ भी वही शाश्वत भावना है, वे ही वातें हैं और प्रणय की जलपना-कल्पना भी वही है।

परिस्थितियाँ जीवन पर प्रभाव डालती हैं। पूजीवादी युग के मानव या वर्ग समाज भेद से मुक्त युग के मानव मे थोड़ा अंतर हो सकता है। परन्तु वही अन्तर तो सब कुछ नहीं है। इससे परे भी एक शाश्वत भावना है, जिसका स्रोत किसी युग या किन्हीं परि-

स्थितियों में नहीं सूखता और वस्तुतः वही मानव का मूल रूप एवं परम चेतनामय रूप है, जो त्रिकाल बाधित सत्य है और जिसका प्रवाह प्रत्येक युग एवं काल में सम भाव से बहता आया है।

रोटी मानव है यह सत्य है। किन्तु रोटी ही मानव है यह मिथ्या है। मानव जीवन के सम्बन्ध में पदार्थवादी दृष्टिकोण कभी भी सफल नहीं माना जाना चाहिये। यदि मानव इन पदार्थवादी भावनाओं से परे कुछ भी है और यदि राग-द्वेष की हल्की आभा भी उसके अन्तर में है तो वह जड़ नहीं है और यदि वह जड नहीं है तो उसके सम्बन्ध मे भौतिकवादी एवं पदार्थवादी दृष्टिकोण निश्चय ही क्षणिक तथा सीमित हैं।

विज्ञान की आड मे आज हमारे साहित्य मे जो उलटफेर हो रहे है, प्रगति के नाम पर जो अतार्किक सिद्धान्त प्रसारित किये जा रहे हैं तथा प्रयोगों की जो धमा चौकडी हो रही है वह वस्तुतः बहुत ही अप्राकृतिक एवं अनर्थमूलक प्रवृत्ति का द्योतक है।

आज का प्रगतिवाद वस्तुतः थोड़े से उधार लिये अनपचे विचारों का वमनमात्र है। हिन्दी काव्य साहित्य मे पीड़ावाद एवं कोमल भावनाओंका सूत्रपात एक विचित्र प्रकार से बताया जाता है। तथा कथित प्रगतिवादियों का कहना है कि पूजीवादी समाज मे मनुष्य की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता छिन जाती है। इस स्वतन्त्रता के छिन जाने से मनुष्य एक क्रीत दास मात्र रह जाता है और इस प्रकार स्त्री-पुरुष के लैंगिक सम्बन्ध मे भी व्यवधान उत्पन्न होता है। इससे विकल होकर कुछ सहृदय व्यक्ति अपनी प्रेयसी की याद मे तड़प उठते हैं और यहीं हिन्दी काव्य मे आजकल के पीडावाद एवं व्यर्थ उग्र कोमलता का प्रवाह उमडता दीख पडता है। किन्तु जहाँ समाज की अन्तःसूत्री धारा का यह काल्पनिक उद्वेग एक सन्तुलित तथ्य का निरूपण नहीं कर पाता वहाँ हमारे नये प्रकाश के साहित्यालोचक इसे प्रलायनवादी प्रवृत्ति की संज्ञा देकर अपना जी हलका करते है। इससे भी अधिक अयथार्थ आलोचना होती है और प्रेम

और जीवन के गायक कवियों का वैज्ञानिक सामाजिक दृष्टिकोण दूषित बताया जाता है।

सामाजिक परिस्थितियां कवि एवं साहित्यकार को कुछ अंशों में प्रेरित अवश्य करती है—यह सत्य है। श्रद्धा, विश्वास, प्रेम, वैराग्य, नीति एवं दर्शन का प्रणेता तुलसी भी भूख का उचित मूल्यांकन किये बिना न रह सका। उसने भी कहा—'आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की'—लेकिन उसने केवल इतना ही न कहा कि आजीवन रोटी का ही राग गाओ।

प्रेम जीवन का मेरुदण्ड है। शतशः घात प्रतिघातों के बीच भी प्रेम का धवल और स्पन्दित स्वरूप जीवन को गति देता है। शृङ्गार प्रेम का माध्यम है। प्रेम और शृङ्गार काव्य के प्राण कहे गये है। रसराज कहलाने का अधिकारी भी शृङ्गार ही है। प्रेम, शृङ्गार और प्रणय का स्वरूप युग युग से एक ही रहता आया है और जब तक मानव, मानव है तब तक वही रहेगा। नवीन जीके ही शब्दों में 'जब पूजी शोपण वर्ग भेद का अन्त हो जायगा तब भी प्रेमी हृदय वेदनाविभोर होकर अवश्य रो गा उठेंगे।'

'ये घण्टे घन घन घन गूँजे
लो आधी रात हो गयी साजन
किन्तु नहीं सुन पड़ी अब तलक
ओ सुकुमारि तुम्हारी पाँजन।'

कला का यह वेदनामूलक अनुराग चिर है, सत्य है और शाश्वत है। "कला तो एक प्रकार से व्यक्तिगत उन्माद की भावनामूलक, कल्पना सहगामिनी सत् चित् आनन्दमयी धारा है। कला, काव्य, साहित्य इन सब का सम्बन्ध तो सनातन रागरस अभिव्यञ्जना से है। केवल वर्तमान का दर्शनमात्र ही चिरन्तन कला का ध्येय नहीं है। कला एक सहमा निष्क्रमणशीला बलवती, वेगवती, अभिव्यक्ति धारा है। वह इस या उस वाद में कैसे बंध सकेगी।"

"जीवन में एक अकारण असन्तोष, एक मदिर चाह, एक अमिट प्यास, एक विषादमयीस्फूर्ति, एक अतृप्ति बनी ही रहती है। सुख और आनन्द के बीच एक हूक सी उठ आती है। मानो सायुज्य संयोग के क्षणोंमे भी विप्रयोग की बाँसुरी की एक कूक सुनाई दे जाती है। रवि ठाकुर कहते हैं : 'Oh ? the keen call of thy flute'— आह! तेरी स्वनित मुरलिका का वह आतुर आह्वान। किस देश से, किसके श्वासोच्छ्वास से स्पन्दित यह आतुर आह्वान हमारी प्राण वंशी के रन्ध्रों से प्रवाहित हो उठता है। कहाँ है वह ? साजन कौन देश मे छाये ?"

लेखक तो उस कृती को धन्य मानता है जिसने कहा—'मधुरतम वे ही हमारे गान है विधुरतम भरे जिनमे अरमान है।'

पन्तजीने कहा —

वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान।
निकल कर आँखों से चुपचाप,
बही होगा कविता अनजान।

यही क्यों कविता तो जन्मी ही प्रेम और करुणा के क्रोड मे—

मा निषादप्रतिष्ठांत्वमगम शाश्वती' समा.।
यत् क्रौंचं मिथुनादेकमवधीत् काम मोहितम्॥

मिलन और वियोग प्रेम के दो पहलू है। मिलन जीवन का एक मधुर स्वप्न है, वियोग प्रेम की गहन समीक्षा। नवीन के काव्य मे प्रेम के दोनों ही पक्ष बडे ही सुष्ठ बन पडे हैं। नवीन की कविताओंमे प्रेम की एक खोज है। 'कुकुम' की भूमिका मे स्वयं नवीन जी ने लिखा है—'बाज औक़ात कुछ धुँआ सा मन मे मँडराने लगता है और कुछ कहने की ख्वाहिश हो उठती है।' यह धुँआ ऐसा वैसा नहीं बलिक वियोग मे सुलगते हुये हृदय का धुँआ है। यहीं पर कवि की ईमानदारी स्पष्ट हो जाती है। वह कवि स्तुत्य है जो अपनी चिर प्रवहमान सास्कृतिक परम्पराओंके प्रति ईमानदार हो। नवीन

का कवि सर्वथा मानव जीवन के राग-विरागों को समझने में समर्थ है। नवीन ने प्रणय से अनुरंजित होकर मिलन का राग गाया है।

मेरे ढिग बैठि रहो नेह को सँजाये दीप;
मान जनि करो सजनि लाज को सिकोरे छोर।
कोमल सरोजन तें मुख चन्द्र ढाँको, जनि
आजु खुलि जाउवे यो हिय की मृदुल डोर।
एक मुसक्यान, एक छिन वा छटा को दान,
नेह की विभूति मोहि देहु करि कृपा की कोर।
कोमलता, मंजुलता वारि डारी विधिनाने,
मेरे हित निठुराई राखी यह क्यों बटोर।

रीति कालीन कवियों की भाँति नवीन अपनी मानिनी प्रेयसी से प्रेम का मधुदान माँग रहे हैं। उनके प्राणों में एक आतुरता है हृदय में एक धड़कन है और मिलन की तीव्र आकुलता स्वतः स्पष्ट है।

नवीन का प्रेमी हृदय मिलन की मधुरिमा के रस में शराबोर है और सम्भवतः इसीलिये बार बार नायिका से प्रणय का निवेदन करता है :—

एक बार नत लोचन होकर
कह दो है स्वीकार।
एक बार कह दो है स्वीकृत
तेरा लघु उपहार
एक बार कह दो है पागल
तेरा विह्वल प्यार
एक बार कह दो हाँ हमने
देखी तव मनुहार।
ओ मेरी पत्थर की मूरत
झुक जाओ इस बार

"जीवन मे एक अकारण असन्तोष, एक मदिर चाह, एक अमिट प्यास, एक विषादमयीस्फूर्ति, एक अतृप्ति बनी ही रहती है। सुख और आनन्द के बीच एक हूक सी उठ आती है। मानो सायुज्य संयोग के क्षणोंमे भी विप्रयोग की बाँसुरी की एक कूक सुनाई दे जाती है। रवि ठाकुर कहते हैं: 'Oh ? the keen call of thy flute'—आह! तेरी स्वनित मुरलिका का वह आतुर आह्वान। किस देश से, किसके श्वासोच्छ्वास से स्पन्दित यह आतुर आह्वान हमारी प्राण वंशी के रन्ध्रों से प्रवाहित हो उठता है। कहाँ है वह ? साजन कौन देश मे छाये ?"

लेखक तो उस कृती को धन्य मानता है जिसने कहा—'मधुरतम वे ही हमारे गान है विधुरतम भरे जिनमे अरमान हैं।'

पन्तजीने कहा .—

वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान।
निकल कर आँखों से चुपचाप,
वही होगा कविता अनजान।

यही क्यों कविता तो जन्मी ही प्रेम और करुणा के क्रोड में—

मा निपादप्रतिष्ठात्वमगम शाश्वतीः समा.।
यत् क्रौंचं मिथुनादेकमवधीत् काम मोहितम्॥

मिलन और वियोग प्रेम के दो पहलू है। मिलन जीवन का एक मधुर स्वप्न है, वियोग प्रेम की गहन समीक्षा। नवीन के काव्य मे प्रेम के दोनों ही पक्ष बड़े ही सुष्ठ बन पडे है। नवीन की कविता-ओंमे प्रेम की एक खोज है। 'कुकुम' की भूमिका मे स्वयं नवीन जी ने लिखा है—'बाज औक़ात कुछ धुँवा सा मन मे मँडराने लगता है और कुछ कहने की ख्वाहिश हो उठती है।' यह धुँवा ऐसा वैसा नहीं बल्कि वियोग मे सुलगते हुये हृदय का धुँवा है। यहीं पर कवि की ईमानदारी स्पष्ट हो जाती है। वह कवि स्तुत्य है जो अपनी चिर प्रवहमान सांस्कृतिक परम्पराओंके प्रति ईमानदार हो। नवीन

का कवि सर्वथा मानव जीवन के राग-विराग ...

है। नवीन ने प्रणय से अनुरंजित होकर मिलन ...

मेरे ढिग बैठि रहो नेह को सँजाये दीप,
मान जनि करो सजनि लाज को मिटाय ...
कोमल सरोजन तें मुख चन्द्र ढाँको, जनि
आजु खुलि जाउवे द्यो हिय की मृदुल डोर
एक मुसक्यान, एक छिन वा छटा को दान,
नेह की विभूति मोंहि देहु करि कृपा की कोर।
कोमलता, मंजुलता वारि डारी विधिनाने,
मेरे हित निठुराई राखी यह क्यों बटोर।

...नन्द की
... मानो
...ये गये
...री के
हँसे
'से'
के
...ो

रीति कालीन कवियों की भाँति नवीन अपनी मानिनी प्रेयसी से प्रेम का मधुदान माँग रहे हैं। उनके प्राणों मे एक आतुरता है हृदय में एक धड़कन है और मिलन की तीव्र आकुलता स्वत. स्पष्ट है।

नवीन का प्रेमी हृदय मिलन की मधुरिमा के रस में शराबोर है और सम्भवतः इसीलिये बार बार नायिका से प्रणय का निवेदन करता है :—

एक बार नत लोचन होकर
कह दो है स्वीकार।
एक बार कह दो है स्वीकृत
तेरा लघु उपहार
एक बार कह दो है पागल
तेरा विहृल प्यार
एक बार कह दो हाँ हमने
देखी तव मनुहार।
ओ मेरी पत्थर की मूरत
झुक जाओ इस बार

एक बार तो मिल जाने दो
इस वीणा के तार।

सचमुच कवि का प्यार कितना पागल है। वह अपनी हठीली नायिका से उसी प्रकार निवेदन कर रहा है जैसे पत्थर की मूर्ति से कह रहा हो। वीणा के तार मिल जाने से जीवन की रागिनियो के बज उठने की ओर संकेत है।

नवीन जीको मांसल भावना का कवि माना गया है। आधुनिक आलोचकों के अनुसार कवि नवीन 'छायावादी विचारधारा से प्रभावित फ्रायडीय छायावाद के पोषक एक पलायनवादी रोमांच-कारी भावना के कवि हैं। वासना जनित सघन भावों का गुफन इनके गीतों में अपरिहार्य एवं पुष्ट है।' नवीन की कविताओं में इसकी अभिव्यक्ति तिलमिलाती हुई दिखाई देती है। चिरन्तन आलम्बन प्रिय का स्वरूप ही है। बीते दिनों के संयोगों की स्मृति सञ्चारी का कार्य करती है। गीतों का मर्म रसराज शृङ्गार है। एक ओर यदि संयोग मधुर मिलन का वितान तानता है तो दूसरी ओर वियोग की प्राण मन्थनकारिणी घड़ियाँ भी वेदना को साकार करती हुई दिखाई पडती हैं। संयोग अधिकतर मानसिक ही वन पड़े हैं। रति के अनुकूल प्रकृति के उपकरणों को पाकर जैसे प्रेयसी की याद भभक कर मानस पर छा जाती है, परन्तु उसमें भी वियोगी हृदय की एक चुटीली छाप पड ही जाती है।

प्राण, तुम्हारी हँसी लजीली,
रजत जुन्हाई वन आई है,
हुई यामिनी मुदित रसीली,
यह तव ज्योत्सना स्मित तरंगिणी
औ गम्भीर गंगा अम्बर की
हिल मिल कर वन गई एक ही
मानो द्विधा मिटी अन्तर की

मिली तुम्हारी हास धुनी मे
यह नभ शैवलिनी शंकर की
जिसकी विस्तृत तारा-धारा
अब न रही उतनी चमकीली।

प्रेयसी का मधुर हास लज्जाभिभूत है एवं अलौकिक आनन्द की सृष्टि करता है। उस लजीली हँसी से प्रकृति का कण कण मानो मुखरित हो उठा है और समस्त क्रियाकलाप मादकता में डूब से गये हैं। कवि स्वतः आत्मविभोर हो उठा है। उस मादक हँसी के अतिरिक्त उसे कुछ और जैसे दिखाई ही नहीं देता। 'तुम क्या हँसे कि नभ के हिय से निकली तम भ्रम अनी नुकीली' मे 'तुम क्या हँसे' प्रयोग भावातिरेक का परिणाम जान पड़ता है। महाकवि प्रसाद के 'जीवन की गोधूली मे कौतूहल से तुम आये' की भाँति ही नवीन भी भावुकता का अतिक्रमण करते दिखाई देते है।

जैसा हमने अभी कहा नवीन का मिलन अधिकतर मानसिक होता है। उसमे भी वियोग की सी छटपटाहट और वेदना उभरती हुई दिखाई देती है।

ग्रीव मे वह तव मृदु भुज माल
स्मरण कंटक बन आई बाल
तुमने आकर विहँस प्रियतमे,
नयनों में भर प्यार।

निज भुज माला इस ग्रीवा मे
डाली थी उस काल।
स्मरण शर वह बन आई बाल।

उस वक्षस्थल पर शिर रख,
तुम मौन शान्त गम्भीर
देख रही थी हमे दृगों से
प्राणार्पण रस डाल।
स्मरण वे शूल बने है बाल।

प्रिय तुम क्यों हो इतनी अच्छी
सुघड, सौम्य, रसखान,
क्यों कर दिया हमारा जीवन
तुमने सफल निहाल
लखो, अब ये स्मर शूल कराल।

अतीत की मधुर स्मृतियाँ कवि को झकझोर रही हैं। कवि-हृदय यदि सहज कोमल और मधुर स्मृतियों को चित्रित न करे तो प्रेम, शृङ्गार एवं मिलन-वियोग की मीमांसा ही निरर्थक हो जाय। नवीन को याद आ रही है वह मधुर घड़ी जब उनकी रानी ने उनके वक्ष-स्थल पर शिर रखकर, मौन, शान्त और गम्भीर होकर, अपने सुरा चषकों में प्राणार्पण का रस ढाल कर उनकी ओर देखा था। नरेन्द्र शर्मा को एक ऐसा ही क्षण विकल कर रहा है। वे भी सोचते हैं:—

आह अन्तिम राह वह,
बैठी रही तुम पास मेरे।
शीश कन्धे पर धरे,
घन कुन्तलों से गात घेरे।
क्षीण स्वर में कहा था,
अब कब मिलेंगे।
आज के बिछुड़े,
न जाने कब मिलेंगे।

यह प्राणों की शाश्वत पुकार है। कौन कहे कि यह निरर्थक है। उर्दू कविता के प्राण मिर्जा ग़ालिब के भी मस्तिष्क में आया कि इस इश्क, शराब और प्याले की भावना को छोड़ कर कुछ और राग छेड़ा जाय, किन्तु परेशान होकर उन्होंने कहा :—

हर चन्द हो मुशाहदये हक कि गुफ्त गू
बनती नहीं है बादा ओ सागर कहे बग़ैर।

जी मान नहीं सकना। यह टोह प्राणों की पुरानी टोह है। प्रेम जीवन है। जीवन प्रेममय है। सच्ची प्यास, रस को छलकाती-ही है, लेकिन यह मादक रस प्यालियो में ही पीते बनता है। नवीन का प्रेमी जीवन काव्य के अक्षर-अक्षर में बोलता है। फागुन के मादक दिनों में आकाश मेघों से घिर आया है और यह मादकता विरही नवीन के लिये वैरिन सिद्ध हो रही है।

लहर रही है मदमाती सी,
यह फागुनी बयार रसीली
कर मधुपान हुई है मानों,
निपट बावरी और नशीली
हहर हहर कर छोड़ रही है,
मदिर श्वास निज सीली सीली
ना जाने कितना मद है,
इस उच्छृङ्खल उन्मुक्त व्यजन में
इस फागुन मे भी घिर आये,
काले धौले मेघ गगन मे।

स्मरण गगन मे चमक रहे है,
वे तव युग लोचन रसराते।
जब कि कनखियों से मुझको तुम
निरख रहे थे आते जाते
दृग से दृग जब मिल जाते थे
तब तुम थे कुछ कुछ मुसकाते
आह! कहाँ वे नयन तुम्हारे
और कहाँ मैं इस बन्धन में
क्यों न आग लग जाये अब,
इस निरगुन फागुनके घन गन मे।

वियोग की वेला स्मृतियों की खींचातानी से भरी हुई है। सम्भवतः कवि बन्दी है। ऐसी दशा में प्रियतमा के 'अमिय हलाहल मद भरे' नेत्रों की याद उसे वेहाल कर रही है। अतीत से आती हुई प्रणय की एक मोहक आँधी कवि के प्राण रन्ध्रों में वेकली का स्वर फूँक रही है।

कभी सँवारे थे हमने भी, उनके कुन्तल पुञ्ज
वे संस्मरण आज आये हैं वनकर काले नाग।

संसार के काव्य जगत मे विप्रलम्भ का ही सिक्का प्रधान रहा है। लेकिन इसकी भी अपनी एक विशेष भारतीय परम्परा रही है।

नवीन जीके प्रेम-काव्य का प्रधान भाव विप्रलम्भ ही है। उर्दू कविता में प्रायः प्रेम का चित्र एकतरफा सा ही चित्रित मिलता है। अंगरेजी साहित्य भी इसका प्राय' अपवाद नहीं है। परन्तु भारतीय परम्परा इसके विपरीत अधिक स्वाभाविकता के साथ दोनों ओर की वेकली के चित्र आँकती रही है। प्रेमी और प्रेमिका एक दूसरे के लिये विह्वल रहते हैं। नवीन ने भारतीय परिपाटी को यथासाध्य सहज स्वाभाविकता के साथ निभाया है।

अमावास्या की रजनी में कवि की सोई हुई विकलता को कोई सहसा निम्न पंक्तियों में जगा सा देता है :—

कुछ क्षणों को तुम, कहो तो, द्वार मेरे आ गये क्यों?
विगत चिन्तन-से, स्मरण में, आज सहसा छा गये क्यों?
द्वार मेरे आ गये क्यों?

धीर पद धरते अटल से, झूमते झुकते विनय से—
निपट संयमशील-से तुम आज मम मन भा गये क्यों?
द्वार मेरे आ गये क्यों?

तुम वशीकरणीय, पीतम, तुम रुचिर वरणीय साजन
लाज नत तव नयन मे—अव विरति के रंग-राग ये क्यों?
द्वार मेरे आ गये क्यों?

आज गुञ्जन हो रहा है स्मरण में, मन में, श्रवण में,
प्राण-वंशी में अचानक मौन स्वर भर गा गये क्यों?
द्वार मेरे आ गये क्यों?

यह दिवाली की अमावस, घुल रहा नभ में तिमिर-रस,
साँझ तक रुक, दीप बनने से कहो, शरमा गये क्यों?
द्वार मेरे आ गये क्यों?

इस अमावस के तिमिर में बुझ गये हैं दीप मेरे,
निविड घन तम मे, हृदय को हृदय से विलगा गये क्यों?
द्वार मेरे आ गये क्यों?

कहीं-कहीं प्रेमिका का भी पुंलिग-सम्बोधन शायद भावातिरेक ही कहा जाय—लेकिन कोई रसिक पाठक प्रेम की इस विह्वल तन्मयता में भक्त भगवान सम्बन्ध भी देख सकता है। यदि इसे इस रूपमें भी स्वीकार किया जाय तब भी प्रबलतर निष्ठा अपेक्षित होगी।

नवीनजीके वियोग चित्र अतीत के रमण स्वरूपों से पूर्णतः मंडित होते हैं। उनमें एक भावोन्मेष की तरलता होती है। सहज रति व्यापार का क्रीड़ा कौतूहल साधारण किन्तु मादक शब्दों मे अंकित दिखाई देता है। बीते दिनो के मनोरागों की मंजूषा कई रंगों में हमारे सामने आती है जब उसे खोलकर हम देखते है तो वहाँ हमें भविष्य के लिए एक मधुर सुयोग दिखाई देता है। भविष्य की रमण भूमि की अनेकार्थी कामना भी नवीन की अपनी एक विशेषता है।

आओ बलिहारी जाऊँ,
तुम झूलो आज हिंडोले।
मैं झोके दूं, तुम चढ़ जाओ,
झूले पै अनबोले।

मेरी अमराई मे झूला,
पड़ा रसीला, बाले!
चंवर डुलाते है रसाल के
रसिक पूर्ण हरियाले।

रस-लोभी अलिगण मँडराते,
हैं काले भँवराले।
सूना झूला देख,
उभर आते हैं हिय के छाले।
आओ पैंग बढाओ,
झूले की तुम हौले हौले।
सजनि, निछावर हो जाऊँ,
तुम झूलो आज हिंडोले।

भोली सहज लाज मोहकता निज नयनों मे घोले,
आकर सुहरा दो मेरे हिय के सुकुमार फफोले।
आन कँपा दो इस झूले की, रसिक रज्जु की फांसी
मेरी उत्कंठा को सुन्दरि, डालो गलवहियाँ सी।
कासि, कासी, प्यासी आँखों से वरस रही फुहियाँसी
आ जाओ मेरे उपवन मे सजनि, धूप छहियाँ सी।
झुक झुक झूम झूम खिल जाओ हृदय ग्रन्थियाँ खोले,
आओ वलिहारी जाऊँ, तुम झूलो आज हिंडोले।

कवि एक वहुत ही रमणीय स्वरूप हमारे सामने प्रस्तुत करता है। वह चाहता है कि उसकी प्रियतमा 'सहज लाज मोहकता नयनों में घोले' उसके झूले पर आकर वैठ जाय। वियोग ने उसके हृदय पर छाले डाल दिये हैं और प्रेयसी का प्रेम-आलिंगन ही उसकी एक मात्र औषधि है। यह एक शुद्ध प्रणय और यौवनोन्मत्त आकांक्षा का चित्र है। प्रत्येक शब्दमे हृदयकी पुकार है तथा भावनायें अपने स्थानों पर नव वयस्का नायिकाओ की भाति इठला कर मचल मचल उठती है। कवि का हृदय स्पन्दन से भरा हुआ है। उसकी आँखों से रस के निर्झर झर रहे हैं। वह उन्मुक्त यौवन को वाहुपाश मे समेट लेना चाहता है :—

युगल लोचन मे मदिर रंग छलक उठता देख
निठुर तुमने फेर ली, क्यों आंख एकाएक।
सिहर देखो कनखियों से अरुण मेरे नैन,
सकुच शरमा कर कहो, कुछ हाँ नहीं के वैन।
भर रहा है सजनि, फिर से यहाँ शुष्क तड़ाग
जग उठा, हाँ जग उठा है सुप्त अश्रुत राग।

मृदुल कोमल बाहु वल्लरियाँ डुलाकर बाल,
कठिन संकेताक्षरो को, करो आज निहाल।
आज लिखवा कर तुम्हारे पूजकों के नाम,
हृदय की तड़पन हुई है, सजनि पूरन काम।
राग के, अनुराग के, अब खुल गये है भाग,
जग गया, हाँ जग गया है सुप्त अश्रुत राग।

पंक्ति पंक्ति और उसका शब्द शब्द रंगीली कल्पना की तूलिका से पलपल में उभरती हुई प्रेमी की चिर नवीन मनुहारों को सजीवता का वरदान सा दिये डालता है।

कवि के नेत्र प्रणय मदिरा से झूमते हुए सर्वत्र मादकता सी छलका रहे हैं और मानों उसीके मिस निष्ठुर प्रेयसी को ढूँढ़ते फिरते हैं। 'कुछ हाँ नहीं के वैनों' में ही जीवन का समस्त राग भरा हुआ है। उन्हीं रागों के धागे से प्राण अटके हैं। उन्हीं रागों से कवि का शुष्क तड़ाग भरने जा रहा है। प्रेम के ऐसे मादक क्षण जब जीवन मे आ जाते हैं तो सूखा काठ भी हरा हो जाता है और उसे भी जी उठने की एक लालसा हो जाती है। प्रेम, मानव के स्वाभाविक मनोविज्ञान की थाती है। उसकी उपेक्षा से जीवन की उपेक्षा हो सकती है। नवीन का जीवन प्रेम का अक्षय तूणीर है, भावनाओं का बसेरा है।

नवीन चिर तरुण कवि हैं। उनकी जवानी की रसार्द्रता आलिंगन के मधुर विलास से आन्दोलित है। रति इनका चिरन्तन भाव है। उनके भावुक हृदय में यदि प्रेम की टीस छिप कर आहें भरना

चाहती है तो असह्य वियोग बरबस नीरवता को भंग करके मुखरित हो उठता है। यौवन पूर्णतः एवं सर्वतः रस सिक्त है। प्रिय की मादक स्मृति प्रकृति की नशीली मोहकता से मिलकर चित्त को अस्थिर कर देती है, मानस को विकल कर देती है। परन्तु यह अस्थिरता, यह वेकली नवीन को प्रिय है। कवि का शायद विश्वास है कि यही लौकिक, अतृप्त प्रणय-पिपासा नियति के क्रम में स्वतः ऊर्ध्व गामिनी होकर चिर-मिलन की साधना भी बन सकती है।

जीवन में अपेक्षित नियंत्रण की प्रतिष्ठा है, किन्तु नियंत्रण और दमन में मूल भेद है। हृदय के स्वच्छन्द उच्छ्वासों मे दमन के लिये स्थान नहीं, किन्तु स्वस्थ मानस के उन्मुक्त उच्छ्वास अपने ही अनु-शासनमें बँधे हुए स्वत' नियंत्रित होते हैं। नवीन का प्रेमोच्छ्वास भी संतुलित मनोरागों की उद्भावना है। उसमें एक रसीली कसक है, एक मतवाली टीस है तथा हृदय के मर्म तक को छू जाने वाली शक्ति-शालिनी भावना है। उनके गीत निश्छल हैं। उन गीतोंमें एक प्रकारकी निष्ठा है। कवि लौकिक रूप व्यापारों को हमारे सामने रखता है। उसके प्रतीकों का एक शृंगारिक रूप होता है। उसके वर्णन, गायन और चित्रण में एक विचित्र सजीवता से युक्त अनुरागमयी मनो-भूमि होती है। पढ कर मन में एक प्रकार का पार्थिव उन्मेष और हृदय में एक सिहरन उत्पन्न हुये विना नहीं रहती।

निरख निरख कलियों की मादक मुसकान अमल
वलि जाऊँ! आई है तव स्मिति की स्मृति विह्वल
मम मन सर मे विकसित हैं नव युग नयन कमल
परिमल मिस आई तव तन सुवास सिहर सिहर।
ओ, मेरे मधुरापर।

× × ×

मत ठुकराओ मुझे सलौनी,
मैं हूँ प्रथम प्यार का चुम्बन।

मुझे न हँस हँस टालो, मैं हूँ,
मधुरी स्मृतियों का आलम्बन।

इतना ही नहीं वल्कि नायिका से प्रणय निवेदन करते समय आतुर नवीन की प्रेम विह्वलता अकथनीय है।

ओ मेरे प्राणों की पुतली,
आज तनिक कुछ कह लेने दो।
अहो, आज भर ही कहने दो,
यह प्रवाह कुछ तो बहने दो
संयम! मेरी प्राण रंच तो,
आज असंयम में बहने दो।
मौन भार से दबे हृदय को
कुछ मुखरित सुख सह लेने दो।
आज तनिक कुछ कह लेने दो।

सरल मानस के उन्मुक्त उद्‌गार स्वस्थ शृंगार के रसीले फल हुआ करते हैं। नवीन जी के मन में एक स्वाभाविक शंका उठती है और वे पूछ बैठते हैं :—

राग मे ही तो मनुज के सुप्त विजड़ित भाव जागे।
अव विराग विवाद क्यों, जव आ गया अनुराग आगे।
मानवों की मुक्ति है, इस राग औ अनुराग में ही
छुट सकें क्यों राग जव वे आ पड़े है भाग में ही
ध्यान वस इतना रहे, हो ऊर्ध्व गामी मनुज देही
मनुज के वश रस रहें, सुलझे रहें सब तार तागे।
राग मे ही तो मनुज के सुप्त विजड़ित भाव जागे।

प्रेम जीवन की तन्द्रा का जागरण है; अत्यन्त स्वाभाविक है और मुक्ति का द्वार है। हाँ एक संकेत अवश्य नवीन जी देते हैं और वह यह कि 'हो ऊर्ध्वगामी मनुज देही।' कवि का विश्वास है कि पार्थिव प्रेम ही परम साधना का द्वार उन्मुक्त कर सकता है, किन्तु उसकी

भित्ति ओछी न हो, उसमे कुत्सित वासना की अपवित्रता न हो— रूपमाधुरी का रसास्वादन उसकी सात्विक श्री को नष्ट करने वाला न हो।

नवीनजीकी कलामोहक सपनों की मधुर पयस्विनी है। तरल तरंगों की भाँति जीवन की प्रणयी मीठी उर्मियाँ उसमे उठा करती हैं। अपनी प्रियतमा से, कवि, ललक कर प्रणय अन्ध बाहों के दुहरे आलिंगन में बँध जाना चाहता है।

मान छोडो मानिनी अब
नयन मे सपना भरे,
तुम विहँस दो अभिमानिनी अब।

देव सरि में आज तिरने,
आ गयीं हैं चन्द्र किरणें,
नील अम्बर में लगे हैं,
शुभ्र बादल पुँज घिरने।
मद भरी है प्रकृति, तुम हो
क्यों विरत संन्यासिनी अब।
कौन सुख है मान मे सखि,
टीस उठती प्राण मे सखि।
हहरने लगता हृदय यह,
जान मे अनजान मे सखि।
पन्थ है यह लघु हमारा,
बन चलो सहगामिनी अब।
बाट जीवन की न जाने,
लुप्त होवे किस ठिकाने।
किन्तु फिर भी बन रहे है,
आज अपने ही बिगाने।

क्यों न इस मन में बहें,
चिर प्रेम की मन्दाकिनी अब।
मान छोड़ो मानिनी अब।

मिलन के मधुर प्रसंग में कहीं कहीं नवीन जी कुछ खुल से जाते हैं और उनके हृदय की कली निर्भीकता से खिलकर खिलखिला पड़ती है। केवल मन चाहे की प्राप्ति का आह्लाद ही नहीं वरन् उसकी शक्ति का सम्बल भी साथ है और वे गाते है: -

अब न मुझे पावस का डर प्रिय,
अब क्यो कांपेगा निशि में हिय
तुम्हें गोद में ले उमडेगा मेरा पारावार।
स्वप्न मम बन आये साकार।

नवीन के वियोग गीत प्राणों को उद्वेलित कर देते है। जहाँ मिलन की आतुरता जीवन में एक मिठास भर देती है, वहीं वियोग की बेकली भी दिल को झकझोरे बिना नहीं रहती। यह होते हुए भी विरह की कातरता मे हम नवीन को विचलित होते नहीं देखते।

हम कल्पना हिंडोले मे, प्रिय,
तव छवि दुलराया करते हैं।
मन सर में लख तव मुख अंबुज,
निज हिय हुलसाया करते है।

मैंने नयनोन्मीलन करके इधर उधर सब ओर निहारा
पर लोचनगत हुई मुझे तो, यह प्राचीरवती दृढ़कारा
मेरी काल कोठरी सूनी, अर्गल बद्ध द्वारा बेचारा।
ना जाने आ गया कहाँ से, तव कंकण किंकिणिका सिंजन
प्राण तुम्हारे कर के कंकण।

वियोग की साकारता स्पष्ट है, पर साथ ही स्मृतिमात्र से कवि का उल्लास भी शिथिल नहीं जान पडता। वियोग मे प्रिय की

स्मृति ही जीवन का मेरुदण्ड है। नरेन्द्र शर्मा तो यहाँ तक कहते है :--

दो प्राणों के बीच खिंची हैं,
पत्थर की दीवारें रानी।
सहनी पडती है प्राणी को,
वधिर,वधिक,विधि की मनमानी।
किन्तु नहीं स्वीकार पराजय,
कवि समर्थ है सब सह लेगा।
वह अपना स्वामी मधु अक्षय
सुधि को तो विधि छीन न लेगा ?

रसराज की आराधना में कवियों और कलाकारों ने युगों से अपनी पुष्पाजलियाँ चढाई हैं—शायद शान्ति के वरदान की प्राप्ति के लिये नहीं वरन् प्रसाद में केवल पीड़ा को चिरजीवी करने के लिये क्योंकि इसी के द्वारा हृदय का मन्थन होता है; भावनाओं का मधुर नवनीत प्राप्त होता है जिसे कवि संजीवनी मानता है। 'नवीन' के पुष्प भी रसराज की अर्चना मे अपनी चिरनवीनता और सुरभि से शराबोर है केवल नये ही नहीं, नवयौवन के अजस्र स्रोत भी है।

'केते' निज मत कल्प करि 'व्यर्थ रचे थे वाद'

आज का बुद्धिवादी युग विभिन्न दृष्टिकोणों को पहले बना कर ही सोचने का आदी है। 'वाद' ही युग की सीमा बन गये हैं। चिन्तक भी परिधि में बँध सा गया है और उसी मे वह संसार को बँधा हुआ देखना भी चाहता है। मध्य युग मे लोग विभिन्न 'पंथ' बनाया करते थे। गोस्वामीजीने कहा—'दम्भिन निज मत कल्प करि प्रकट कीन्ह बहु पन्थ।' इतिहास के पन्नो के उलटते ही वे 'पंथ' भी उलट गये, किन्तु उन पंथों का स्थान व्यक्तिगत भावनाओंने ले लिया और यह स्वरूप कहीं अधिक उलझनों और सन्देहों से भरा हुआ सिद्ध हुआ है। स्वस्थ दृष्टिकोण रुग्ण होने लगे और चिन्तन-धारा की स्वच्छन्दता कृत्रिम सीमाओं में बाँध दी गयी।

१६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक हमारा निर्मल साहित्याकाश वादों की छाया से धूमिल न हो पाया था। साहित्य साधक के लिए एक राजमार्ग था जो प्रशस्त था और जिसमे व्यर्थ के मोड न थे। धीरे-धीरे हम पश्चिमाभिमुख हुए। विदेशी साहित्य से हमारी घनिष्ठता बढ़ी और निरपेक्ष जागरूकता के स्थान पर अनावश्यक पाश्चात्य की मुखापेक्षिता हमारे विचारों मे घर कर बैठी। साहित्य मे छायावाद, रहस्यवाद, हालावाद इत्यादि की परम्परा चल पड़ी। वादों की हवा से हमारी प्रज्ञा डाँवाडोल होने लगी। भारतीय सहज-बुद्धि समन्वय मे बड़ी ही कुशल होती है। बाह्य प्रभावो मे हमने अपने 'स्व' को समाहित कर दिया। सन्देहों की एक धूमिल छाया घिर आई और व्यक्तिवाद के जुगनू यत्र तत्र इसमे चमकते हुए दिखाई देने लगे।

"यह सम्भव है कि आलोचक वृन्द अपनी सुविधा के लिये इस प्रकार के कृत्रिम वर्गीकरण का सहारा ले या यह भी सम्भव है कि

कच्ची प्रतिभा वाले नौसिखिये कलाकार इस प्रकार के वर्गीकरणों की डोरी को पकड़ कर कुछ लिखने का अभ्यास करें, लेकिन शाश्वत सत्य यह है प्रतिभासम्पन्न कलाकार अपनी सृष्टिमें उपर्युक्त रूप और प्रकार की अप्राकृतिक धाराओं में बँधकर नहीं चला करते।"(आचार्य सुकुल)

उपर्युक्त वर्गीकरणों की वैज्ञानिक समीक्षा यह स्पष्ट बताती है कि उनके मूल मे यदि कुछ भी ग्राह्य आधार है तो वह मानसिक भावनाओं के प्राकृतिक विकास क्रम पर ही आधारित है, उन्हीं के अनुसार कवि की अपनी कृतियों मे समय समय पर मांसलता, मादकता, 'क्रान्ति विलास' इत्यादि की उमंगो की प्रधानता दीख पडती है, किन्तु कालान्तर मे वास्तविक जीवन का अनुभव और चिरन्तन सत्य का सापेक्ष दर्शन ज्यों ही कवि के अपने जीवन मे प्रवेश करते हैं—त्योंही वह सहज चिन्ताशील हो उठता है और 'रहस्यान्वेषण' उसकी लेखनी मे फूट पडता है तथा दर्शन उसका चिर सहचर बन जाता है। नवीन भी इसके अपवाद नहीं।

हालावाद—

हाला, मदिरा अर्थ में प्रयुक्त होता है। सूफियों ने इस्लाम के बाहरी आडम्बरो के विरुद्ध क्रान्ति की। शराब, सुराही, प्याला, साकी, मीना इत्यादि को प्रतीक मानकर इन्हीं के सहारे अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति का परिचय देते हुए इन लोगों ने अपनी मौज के गीत गाये। इस्लाम के जड नियमों के विरुद्ध इन्होंने एक आवाज उठाई और यह कहा कि प्रेम के बिना इन स्थूल अन्धानुगमनों से खुदा नहीं मिल सकता। सूफियों ने उस अनन्त शक्ति की 'जलवागरी' का दर्शन दृश्यमान् जगत के कण-कण मे किया। आत्मा और परमात्मा का एकीकरण घोषित किया गया। किन्तु संसार को मायावादियो की भाँति मिथ्या नहीं माना गया। 'बंदे और खुदा' की एकता से इस्लाम तिलमिला गया। परन्तु सूफी लोग अपने प्रेम का आधार न छोड सके। शराब के प्याले मे ही प्रेम का नक्शा देखा गया और उसी को आधार मान कर साधना की भित्ति खडी

कर दी गई। लौकिक प्रेम के ऊपर पारलौकिक प्रेम के प्रासाद खड़े किये जाने लगे। 'बुतों की मुहब्बत' बुरी नहीं मानी गई क्योंकि मुहब्बत एक रोशनी समझी गयी जो 'बन्दे को खुदा' के पास तक ले जाती है। प्रेम की मादकता के साथ-साथ शराब के प्यालों का दौर दौरा शुरू हो गया।

उसका एक दार्शनिक स्वरूप सामने उभर आया। उमर खैयाम की रुबाइयाँ इसी स्वच्छन्द वृत्ति की मनोरम मादकता से भरी हुई है और संसार ने उन्हें ऊँचा स्थान भी दिया है।

ये कवितायें 'इदमित्थं' वासनामय उद्‌गारों एवं उत्तेजक प्रणय चित्रो से भरी रहती हैं। परन्तु उनके भीतर वही सूफी दार्शनिकता निवास करती है, जिसमे आत्मा-परमात्मा के लिये या 'आशिक माशूक' के लिये तड़पता है। विश्व के प्रत्येक कण में उसी का 'हुस्न' देखता है और अनेक विघ्न-बाधाओं को पार करता हुआ पानी की बूँद के समान उसी चेतना के समुद्र में मिल जाना चाहता है। गालिब ने भी कहा—

इशरते कतरा है,
दरिया में फना हो जाना।

सन् १९३५ मे देश क्रान्ति की घड़ियोंसे गुजर रहा था। एक ओर पराधीनता मे जकडी मानवता सिसक रही थी और दूसरी ओर ब्रिटेन की गोलमेज सभाओं मे हमारी प्रसन्नता के सामान बटोरे जा रहे थे। असन्तोष और चेतना की धूमिल परछाई भारतीय क्षितिज पर छा रही थी। आन्दोलन चलते रहे। परन्तु कुछ परिणाम न निकला। अहिंसावादिता उबलते हुए खूनो को बुरी लगती थी, और फलस्वरूप क्रान्तिकारी दलों का संगठन दिन प्रतिदिन दृढ़ होता जा रहा था। समाज और साहित्य भी अछूता न रहा। समाज मे पाखंडों के विरुद्ध आर्य समाज ने आवाजें बुलन्द की। साहित्य मे मान्यताओं को छोड़ छायावादी कवितायें होने लगीं। प्रेम की स्वच्छन्द भावनाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हो गया।

युवक कवि 'बच्चन' को नैतिकता खटकने लगी। सूफियों की प्रेममार्गी परम्परा को पकड़ कर 'बच्चन' अपनी मधुशाला की ओर

वढ चले। उनको अपनी मधुशाला 'तपोवन' की भाँति दिखाई देने लगी। साहित्य मे हालावाद घुस आया।

इस हालावादमें कवि की घोर वैयक्तिकता हमें देखने को मिलती है। सम्पूर्ण सामाजिक चेतनाओं को नष्ट-भ्रष्ट कर देने के लिये मानों वच्चन का आक्रोश एक दम भभक उठा और थोड़े दिनों बाद राह न पाकर फिर मौन हो गया। वच्चन तो संसार से रूठे हुये थे। उन्होंने कहा भी 'विश्व पूरा कर सका है कौन सा अरमान मेरा' और शायद इसीलिये वे संसार से विद्रोह कर उठे :—

रक्त से सींची गई है, राह
मन्दिर मसजिदों की।
किन्तु रखना चाहता हूँ,
पाँव मधु सिंचित डगर मे।
है कुपथ पर पाँव मेरे,
आज दुनिया की नजर में।

वच्चन का कवि तो अपने ऊपर स्वयं इतना हँसा कि संसार के हँसने की उसको चिन्ता ही नहीं रही। वह अपने ऊपर रोया भी इतना कि निर्भर के अनवरत आँसू भी उसकी समता नहीं कर सके। और फिर शायद अपने इन आँसुओं को शराव की मस्ती मे डुवो देने के लिये कवि ने मधुशाला से तादात्मय ही स्थापित कर लिया।

मैं मदिरालय के अन्दर हू,
मेरे हाथों मे प्याला।
प्याले मे मदिरालय विम्बित,
करने वाली है हाला।
इस उधेड-बुन मे ही मेरा,
सारा जीवन वीत गया।
मैं मधुशाला के अन्दर था,
मेरे अन्दर मधुशाला।

'बच्चन' का जीवन मधुशाला मय है। विषमता से भरे हुए देश को 'बच्चन' की मधुशाला में ठहरने पर थोड़ा विश्राम अवश्य मिला होगा।

हालावाद का प्रारम्भ हमने देखा। जीवन के सूने वैराग्य-मरु में प्रेम की पयस्विनी बहाने का यथासाध्य प्रयत्न हालावाद ने किया है।

नवीन के काव्य में हालावाद का समावेश अधिक नहीं हो पाया है। नवीन जी के समस्त पार्थिव उन्मेषों को आध्यात्मिकता की ही उड़ान कहना अधिक उचित नहीं प्रतीत होता। जीवन की गोधूलि का आभास पाकर भी एवं उसके लिये चिंतित रहते हुये भी युवकों की भाँति जीवन में प्रेम एवं शृंगार की मदिरा उंडेलने के लिये नवीन का काव्य तत्पर दिखाई देता है। एक मादक प्रेम का छलकता हुआ प्याला लेकर कवि बेहोश हो जाना चाहता है।

साकी! मन घन गन घिर आये,
उमड़ी श्याम मेघ माला।
अब कैसा विलम्ब! तू भी
भर भर ला गहरी गुल्लाला॥
तन के रोम रोम पुलकित हों,
लोचन दोनों अरुण चकित हों,
नस नस नव झंकार कर उठे,
हृदय विकम्पित हो हुलसित हो।
कब से तड़प रहे हैं,
खाली पड़ा हमारा यह प्याला।
अब कैसा विलब! साकी,
भर भर ला तू अपना हाला॥
और और मत पूछ दिये जा।
मुँह माँगे वरदान लिये जा।

तू बस इतना ही कह साकी,
और पिये जा और पिये जा।
हम अलमस्त देखने आये हैं,
तेरी यह मधुशाला।
अब कैसा विलम्ब साकी।
भर भर ला तन्मयता हाला।
हो जाने दे ग़र्क़ नशे में,
मत आने दे फ़र्क़ नशे मे,
ज्ञान ध्यान पूजा पोथी के,
फट जाने दे वर्क़ नशे में॥
ऐसी पिला कि विश्व हो उठे,
एक बार तो मतवाला।
साक़ी अब कैसा विलम्ब,
भर भर ला तन्मयता हाला॥

कूज़े, दो कूज़े, मे बुझने वाली मेरी प्यास नहीं।
बार बार, ला ला कहने का समय नहीं, अभ्यास नहीं।

अरे! बहा दे, अविरल धारा।,
बूँद बूँद का कौन सहारा।
भन भर जाय, जिया उतरावे,
डूबे जग सारा का सारा।
ऐसी गहरी ऐसी लहराती,
ढलवा दे गुल्लाला।
साकी अब कैसा विलम्ब,
ढरका दे तन्मयता हाला।

नशे मे ग़र्क़ हो जाना ही कवि की वांछा है। 'बार, बार ला, ला, कहने का समय नहीं अभ्यास नहीं'—से स्पष्ट है कि कवि प्रेम का एक ऐसा प्रवाह चाहता है कि वह निश्चेष्ट होकर उसी मे बहने के लिये अपने को छोड दे। वह चाहता है कि उसका

मन भर जाय, जी हर्षातिरेक से इतरा उठे और उसी मादकता में संसार की सुध-बुध भी लुप्त हो जाय।

मांसलवाद—

मांसलवाद और हालावाद वस्तुतः एक दूसरे के प्राण सखा हैं। हाँ इनकी अभिव्यक्ति में थोड़ा अन्तर अवश्य है। वस्तु की दृष्टि से दोनों कवि प्रेम, वासना और शृंगार के एक ही मादक गान गाते हुये सुनाई पड़ते हैं। हालावाद के कवि की अभिव्यक्ति सर्वथा स्थूल होते हुये भी अपने जड़ में कुछ गहराई अवश्य रखती है। परन्तु मांसलवाद का कवि तो केवल वासना की प्रशस्ति ही नहीं करता अपितु 'सलोनी के शरीर पर आक्रमण कर अपनी तृष्णा भी मिटाना चाहता है।'

हालावाद का कवि जब केवल 'उषा का गाल चूम कर' ही संतोष करने लगा, तो ऐन्द्रिक भावना के पुजारियों को थोड़ी निराशा सी हुई। फलतः १९३९ मे अंचलकी मधूलिका अपने आँचलमे मांसलवाद की वह्नि-शिखा छिपाये साहित्य के आँगन में उतर आई।

मांसलवाद के पुजारी को अनुशासन में रहना प्रिय नहीं। 'वह तो क्रीड़ातुर पंछी है, जो अपनी जलन टटोल टटोल कर उस पर अंकुश नहीं रख पाता।' अतः मांसलवाद का कवि अंचल अपनी मधूलिका मे ऐन्द्रिक चित्र देकर उन्हें देखकर पागलों की तरह पाश-बद्ध करने को दौड़ता है। अट्टहास करती हुई यौन पिपासा उसमे फूत्कार बन कर निकली है। उसमे एक ओर यौवन की प्रचन्ड निर्वन्ध झंझा है तो दूसरी ओर ऐन्द्रिय तृष्णा का उच्छृङ्खल मानसिक वाग्विलास। मांसलवाद मनुष्य के पाशविक विकारों का उन्मत्त उभार मात्र है।

मधूलिका के अंचल एक बार रूपभरी जवानी को हाथ मे पाकर खोना नहीं चाहते :—

फूल उसास प्रदोलित,
वक्षस्थल जब उठ उठ आता।

पावक सी इस रूप घटा को,
कौन विलोक अघाता,
गमक रही मद भरी मंजरी सी
मधु मूर्त्ति नवेली ।
गोरे अंग अंग मे हाला,
हालाहल सी अलवेली ।
कहाँ मिलेगा ऐसा बाँका
प्यारा प्यारा यौवन ॥

शृङ्गार की अभिव्यक्ति कोई पाप नहीं है। परन्तु नग्न सौन्दर्य का चित्रण तो नारी-शरीर की शव परीक्षा सा लगता है। 'ज्यों-ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि, त्यों-त्यों खरी निकरे सी निकाई' मे भी सौन्दर्य-वर्णन ही है। इसकी मूल भावना तृष्णा ही जान पड़ती है, परन्तु अभिव्यक्ति का यह स्वरूप कलात्मक है और यह परिधान अति आवश्यक है। मानस मे भक्ति के प्रसंग मे गोस्वामीजी ने कहा है—'सोहे न वसन विना वर नारी।' सचमुच सौन्दर्य की नग्नता तो खल कर रह जाती है।

पं० वालकृष्ण शर्मा नवीन के गीतों में भी एक प्रकार की मासल भावुकता है। जीवन मे रंगीनी भरनेके लिये वे भी उत्सुक दीख पडते है। नायिकाको सामने देख कर उनका धैर्य भी छूट सा जाता है और प्रणय का प्रभंजन उनकी संयमित भावनाओ को क्षत विक्षत कर देता सा जान पड़ता है। वे स्वयं कहते हैं:—

ओ मेरे प्राणों की पुतली,
आज तनिक कुछ कह लेने दो।
अहो। आज भर ही कहने दो,
यह प्रवाह कुछ तो बहने दो।
संयम मेरा, प्राण! रंच तो,
आज असंयम मे बहने दो।

मौन भार से दवे हृदय को,
कुछ मुखरित सुख सह लेने दो।
आज तनिक कुछ कह लेने दो।

यही अभिव्यक्ति, मांसलवाद की देन है। नवीन भी इस प्रकार की अभिव्यक्ति से अलग नहीं रह पाये हैं। वसन्त के नवागम पर मादक पवन का स्पर्श पाकर नवीन की अन्तर्चेतना अनायास वासना के गीत गा उठती है। उन्हें अभाव खटकने लगता है और किसी प्राण-प्रिया को अपने दिल की धड़कनें सुनाने के लिये वे आतुर हो उठते है। उस समय उन्हें कुछ सूझता नहीं। प्रणय का अन्धापन तो प्रसिद्ध है ही :—

मृदु गल वँहिया डाल, विहँसती
वन जाओ गल हार।
अव कैसी यह झिझक सलोनी,
यह कैसा अविचार।
आज सखि नवल वसन्त वहार,
कर रही मदिर भाव सञ्चार।

मधुर मिलन की कल्पना में पुलकित होते हुये भी हम नवीन को देखते है :—

अव न मुझे पावस का डर प्रिय,
अव क्यों काँपेगा निशि मे हिय।
तुम्हें गोद में ले उमड़ेगा,
मेरा पारावार।
स्वप्न मम वन आये साकार॥

इतना होते हुए भी मासलवाद को वह गर्हित भावना जो अन्यत्र चित्रित है नवीन में नहीं आ पाई है। वर्णन वासनामय है अवश्य परन्तु भाव रमण की एक मधु सिंचित पीठिका भी इनका साथ नहीं छोड़ पाई है।

प्रगतिवाद—

'गति को यदि जीवन का अचूक संकेत कहें, तो गतिहीनता को मृत्यु का चिह्न कहना पड़ेगा। लेकिन गति तो किसी ओर भी हो सकती है, जो गति जीवन को पूर्णता की ओर अग्रसर करती है, वह जीवनोन्मुखी होती है और उसी को प्रगति कहते हैं।'×

भारतेन्दु युग मे कवियों ने भारतीय दीनता के वास्तविक प्रतीक किसान तथा मजदूरों को भी अपनी कविता का विषय बनाया। उस युग के कवियों में इनके प्रति पूर्ण सहानुभूति दिखाई देती है। इनकी दीनता से कवि क्षुब्ध हो उठा है। 'प्रेमघन' को किसानों की दुरवस्था से चिन्तित होते हुये एवं उसके निवारणके लिये कुछ साधन प्रस्तुत करते हुये हम देखते है '—

दीन कृपकजन औरहु दया जोग दरसाहीं।
जिनके तन पर स्वच्छ वस्त्र लखियत कहुँ नाही।
मिहनत करत अधिक, पर,अन्न बहुत कम पावत।
जो निज भुजबल हल चलायके जगत जिआवत।
तिनहि सिखावहु कृपी कर्म जस होत विलायत।
करि सहायता और सुखी करि देहु यथावत्।

प्रगतिवादी कविता हिन्दी कविता की कोई नई प्रवृत्ति नहीं। प्रगतिवाद की यह कविता वायु के आकस्मिक आघात से उठी हुई कोई सामान्य हिलोर भी नहीं जिसे महत्व न दिया जाय, बल्कि यह जीवन के महासमुद्र मे उठने वाली उस क्षोभ और अव्यवस्था की लहर के समान है जिसका दर्शन प्रबल प्रभंजन के आलोड़न-विलोड़न पर ही संभव हो पाता है। हमारा आज का जीवन इसी प्रकार के झंझावात से आक्रान्त है और प्रगतिवादी कविता इसी अशांति एवं आन्दोलन का फल है।

देश भक्त कवियों ने राजतन्त्र को बदला। देश को 'परतन्त्र' से 'स्वतन्त्र' में लाकर उन्होंने एक महत्वपूर्ण कार्य किया। आज का

× 'काव्य चर्चा' आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल

प्रगतिवादी कवि एक ऐसी सभ्यता का विकास देखना चाहता है, जिसमें मानवता, दरिद्रता और अंध विश्वास से मुक्त होकर शांति और समता का अनुभव करे। वह पूँजीवादिता एवं रूढ़िवादिता के शिशिर से ठिठुरी हुई मानवता को समृद्धि एवं व्यापकता के खिलखिलाते हुये वसंत की गुलाबी धूप देकर, उसे समुचित जीवन प्रदान करना चाहता है।

आज की अशान्ति एवं असन्तोप-जनक स्थिति ने प्रगतिवादी कवि को एक उत्तेजना प्रदान की है! आज आर्थिक शोपण एवं पाशविक वल मानवता की रंग भूमि पर ताडव नृत्य कर रहे है। दरिद्रता की काली एवं मनहूस छाया घनीभूत होकर देश पर मँडरा रही है। एक ओर विज्ञान बढ़ रहा है दूसरी ओर हमारी दुर्दशा प्रगति मे उससे होड़ लगा रही है। कुरीतियों एवं कुत्सित मनो-वृत्तियों का धुँआ समाज मे भर रहा है। कवि ऐसी स्थिति से ऊब उठा है और एक ऐसी व्यवस्था की मंगल कामना करता है जिसमे आर्थिक शोपण की इति श्री हो, मानवता को सुघड़ रूप मिले और अन्ध विश्वासों का अन्त हो जाय।

आज हमारे असन्तोप का सबसे बड़ा कारण आर्थिक अत्या-चार और अन्याय है। किसान और मजदूर जो आज की विलासिता के आधार हैं, दरिद्रता एवं परवशता में पड़े छटपटा रहे हैं। दिनकर यह सोच कर व्याकुल हो उठते है और उनकी वाणी अचानक सिहर कर यह कह उठती है :—

देख कलेजा फाड़, कृपक
दे रहे हृदय शोणित की धारें।
और उठी जाती उन पर ही,
वैभव की ऊँची दीवारें।

ऐसी परिस्थिति में नवीन जी की रागात्मिका वृत्ति एक दम जैसे तिलमिला जाती है!

मानवता नवीन के जीवनकी थाती रही है। नवीन की भावनाएँ सदा से काल एवं परिस्थिति के साथ रहती आई हैं। राष्ट्र विपन्न हो उठा, कवि रो उठा। राष्ट्र की धरती मुस्कराई और कवि खिलखिला उठा। मानवता कँपी और कवि की प्रज्ञा सिहर उठी। कितनी ईमानदारी है नवीन के कवि में।

शोषण के विनाशकारी आघातो से जब श्रमजीवियों का जीवन थरथराने लगा तो कवि भी समाज की इस विडम्बना पर रो उठा:—

जिनके हाथों में हल बक्खर
जिनके हाथों मे घन है
जिनके हाथों मे हँसिया है
वे भूखे हैं निर्धन हैं।

भारत का प्रगतिवादी कवि यही सोच रहा था, कि उसे मजदूरों के नियंता लेनिन की वह वाणी कि 'विश्व के मजदूरों एक हो जाओ, तुम्हें केवल अपनी गुलामी की जंजीर खोनी है', याद आई और वह भी इसी कथन को मानो दुहरा उठा। विश्वम्भर नाथ शर्मा उसी प्रकार के वातावरण के लिये श्रमजीवियों को उत्साहित करते है :—

दुनिया भर के श्रमजीवी जागो
कुछ अपनी ताकत जानो।
तुममे कितना बल है प्यारे,
कुछ तो अपने को पहचानो।
और न सोचो अपने मन में,
एवमस्तु प्यारे अब बोलो।
महा रुद्र का नयन तीसरा,
प्रलयंकर गति से तुम खोलो।

परन्तु नवीन केवल श्रमजीवियों को ही नहीं अपितु मानव मात्र को एक ऐसा संसार बसाने की प्रेरणा देते है जिससे उभरी हुई

मानवता शिर पर अभिमान का छत्र धारण कर उन्मुक्त भाव से विचरण करे।

नवीन की प्रगति मे भी एक व्यापकता है। इसलिये वे किसी वर्ग का नही, किसी दल का नहीं, वल्कि मानव मात्र के कल्याण की ओर संकेत करते है। उनके 'शिव' की कोई सीमा नहीं है। उनकी मङ्गल भावना कुछ लोगों के विकास तक ही सीमित नहीं है। इसमे एक उदात्त विचारधारा है, जीवमात्र की उन्नति की मङ्गल कामना है।

युग में फैली हुई विपम परिस्थिति को मिटा कर नवीन जी धरती पर ही स्वर्ग वसाना चाहते हैं। वे मानो अपने आप से ही या फिर जन-जन में निहित मानवता को सम्बोधित कर कह रहे हैं :—

हे मानव कब तक मेटोगे,
यह निर्मम महा भयंकरता।
वन रहा आज मानव देखो,
मानव का ही भक्षण करता।
है दुनिया वहुत पुरानी यह,
रच डालो दुनिया एक नई।
जिसमें सर ऊँचा कर विचरें,
इस दुनिया में वेताज कई।

नवीन सामाजिक क्षेत्र में एक स्वतन्त्रता चाहते हैं। रूढि एवं अन्ध परम्पराओ का नाश चाहते है, एवं भेदभाव मिटा कर सम्पूर्ण मानवता को अपनाना चाहते हैं। परम्परागत सामाजिक संकुचित भावो को मिटा कर वे व्यापक मानव धर्म को ही स्थापित करना चाहते हैं।

इसके लिये वे मानवता के विरोधियों को चुनौती देते हुये सुनाई पडते हैं :—

सुन लो, गर तुममें हिम्मत है,
नंगों भूखों का यह गाना।

अब तक के रोने वालो का,
यह विकट तराना मस्ताना ।

जिनको तुम कीड़ा समझे थे,
वे तो यारो ! निकले मानव ।
जो रेंगा करते थे अब तक,
वे आज कर उठे है ताडव ।

मानवता के उन्नायक नवीन प्रबुद्ध हो उठे है । उनकी ललकार से गलित भावनाओं के गढ ढहते हुये दिखाई दे रहे है । नवीन की राष्ट्रीय भावना पर विचार करते हुये उनकी बलवती आशा का स्वरूप हमने देखा है । आज मानवता का अभिषेक करने के लिये भी उसी आशा का ज्वार लेकर नवीन आगे बढ रहे है :—

हम क्यों उदास हत आश बनें,
जागृति की प्रातर्वेला मे ।
हम क्यों मीचें अपने लोचन,
किरणों की नूतन खेला मे ।
तुम करो आरती वसुधा की,
जागें धरती के पूत बली ।
ये नव निर्माण स्वप्न द्रष्टा,
संहारों के अवधूत बली ।

'वसुधा की आरती' 'नवीन' कर रहे हैं । नवनिर्माण उनके अन्दर जग उठा है और भविष्य उन्हे सुहावना प्रतीत हो रहा है ।

हम नव प्रकाश के पुञ्ज अतुल,
हम उषाकाश दीप जग के ।
हम पंथ अगम हम पान्थ विकट,
हम निर्माता नव नव मग के ।

मानवता उठेगी यारो,
इसमें शक सुबहा नहीं जरा ।
हैं उधर जालिमों की तोपें,
तो सीना इधर खूब उभरा।

नवीन का कवि, नवालोक का अग्रदूत है मानवता का नायक है, मानवता का उन्नायक है, मानवता का गायक है।

छायावाद—

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् हमारे साहित्य मे छायावाद की स्थापना हुई। कल्पना की नवीनता ने काव्य को एक नूतनता से भर दिया। हम एक नूतन सौन्दर्य की अनुभूति से परिचित हुये। 'कविता के मनोरम उद्यान में जुही की कली खिल पडी।'

छायावादके सम्बन्ध मे अनेक मत-मतान्तर प्रस्तुत किये गये है। आचार्य शुक्ल ने छायावाद को 'एक शैली विशेष' माना है। कहीं-कहीं उन्होंने इसे "आध्यात्मिक प्रतीकवाद का भी अनुकरण" माना है। प्रो० नन्ददुलारे वाजपेई को यह 'मानव तथा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भान' प्रतीत होता है। डा० रामकुमार वर्मा इसे 'आत्मा व परमात्मा का गुप्त वाग्विलास' मानते हैं। डा० देवराज को ऐसा लगता है जैसे 'छायावाद गीति काव्य है, प्रकृति काव्य है, प्रेम काव्य है।'

कविता के क्षेत्र में जब कवि की अनुभूतियाँ वेदना के सहारे उतरने लगीं तो हमने छायावाद से उनका अभिषेक किया। भावनाओंकी किलक-पुलक, शैली की नवीनता तथा लावण्य की स्वतन्त्रता इसमें विद्यमान थी। स्वयं छायावादी कलाकारों ने वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी रचनाओंको छायावाद कहा है।

इससे स्पष्ट है कि छायावाद एक विशेष अनुभूति है जिसको एक विशेष शैली के द्वारा व्यक्त किया गया है। इन कवियों में रोमांटिक भावनायें वर्ड्सवर्थ, शैली, कीट्स आदि की भाँति प्रवाहित हुई हैं। मनुष्य का हृदय, जगत की बाहरी क्रिया-प्रतिक्रियाओं से

क्या अनुभव करता है—विशेषतः इसी को छायावाद में मुखरित किया गया है।

छायावाद में कवि कहीं भी 'नासेह'—उपदेशक बन कर नहीं आया है। वह तो एक सौन्दर्यान्वेषक ही बन पाया है। कुछ समालोचकों ने कहा है कि छायावादी कवियों का जीवन तपस्या-युक्त नहीं है। इसीलिये उनकी युक्तियों में बल नहीं है। किन्तु क्या यह आवश्यक है कि कवि, चाणक्य होकर नीति के कथन लिखे या वह विश्वामित्र और वशिष्ठ बन कर जीवन की गहन दार्शनिक मीमासा को साकार करे ? नहीं, कवि ने और विशेषतः छायावाद के कवि ने हमे प्रेम का एक सुष्ठ रूप प्रदान किया है। सन्ध्या मे नारी भावना की प्रतीकात्मकता का आरोप कर यदि कवि ने अपने आन्तरिक उल्लास को यथावत् व्यक्त किया तो इसमे उसका दोप नहीं। यदि दृश्यमान् जगत के अणु परमाणु मे उसने परम सत्ता की झलक देखी, यदि वर्पा को उसने आकाश के आँसू और चन्द्रिका को रजनी का धवल हास माना तो इसमें तपस्वी होने का प्रयोजन ही क्या ? सौन्दर्य पर रीझ उठने के लिये हृदय चाहिये। विहारी ने कहा है 'वह चितवन और कछू, जेहि वस होत सुजान'। उसी प्रकार प्रकृति की मनोरम छटा को व्यक्त करने और समझने के लिये एक दृष्टि विशेप और एक हृदय विशेष की आवश्यकता है। यह प्रश्न तो अनोखा है कि इस सौन्दर्यान्वेपण से लाभ क्या ?

छायावाद, सौन्दर्य की अनुभूतियों के सहारे चला है। प्रत्येक वस्तु मे एक विलक्षण सौन्दर्य का अन्वेपण ही छायावाद के कवि ने किया है। 'रजनी के अंचल मे खीलों और फूलों की भाँति मुसक-राते हुये तारे, नदी की मीठी कल कल ध्वनि, झरनों का गान, चह-चहाते हुये पक्षी, वृक्षो के आलिगंन मे विहँसती लतायें, हँसते हुये फूल सच्चे सौन्दर्य की सूचना देते हैं।"

छायावादी कवि ने प्रकृति के विभिन्न उपकरणों मे अपने

विषाद की छाया देखी है। नारी की कोमलतम अनुभूतियों के दर्शन किये हैं और प्रकृति से अपना रिश्ता भी जोड़ा है।

प्रातः कालीन गुलाबी उषा नवीन को 'अरुणा सुकुमारी' सी लग रही है।

रुन झुन,रुन झुन गुन गुन गुन,गुन
भ्रमरी पाँजनियाँ गुँजारी।
तन मन प्राण श्रवण ध्वनि नन्दित,
आई यह अरुणा सुकुमारी।

वन वनमें कम्पन निष्पन्दन भर भर,
विचरा सनन समीरण।
वंश अवलियों के अन्तर से,
गूँजे नव नव स्वागत के स्वन।
सिहर उठे जग के रज कण कण,
पुलकित प्राण खिल उठा चेतन।
जलज खिले मानो अरुणा ने,
अपनी अँखियाँ सजल उघारीं।
बजी भृंग पाँजनियाँ आई,
ठुमुक ठुमुक अरुणा सुकुमारी॥

कलियों के विकास में कवि नवीन अपनी प्रेयसी की स्मिति की विह्वल स्मृति के दर्शन करते हैं, एवं परिमल की सुगंध उनके लिये मानों उनकी प्रियतमा के शरीर का मोहक गंध हो। यह एक प्रकार की व्यक्तिगत भावना का आरोप कवि प्रकृति में कर रहा है।

निरख निरख कलियों की मादक मुसकान अमल,
बलि जाऊं आई है तव स्मिति की स्मृति विह्वल।
मम मन सर में विकसित हैं तव युग नयन कमल,
परिमल मिस आई तव तन सुवास सिहर सिहर।
ओ, मेरे मधुराधर॥

प्रसाद, 'अम्बर पनघट में, उषा नागरी के तारा घट डुबोने' का संकेत कर अपनी प्रेयसी को जगाते हैं। नवीन भी अपनी प्रियतमा को 'द्विज कुल के नीडों में मन्त्र उच्चारण' करने के बाद जग उठने को कहते हैं :

द्विज कुल ने जागरण मन्त्र,
निज नीड़ों में उच्चारे।
लतिकाओं ने नव जागृति के
हिल मिल किये इशारे।
कब तक सोओगे तुम मेरे
बारे, नयन उजारे।
मुसकाओ जागरण अमी रस
दृग से पीते पीते।
जागो मेरे प्राण पिरीते।

छायावाद का कवि अपनी अति तन्मयता में किस असीम आत्म-विस्मृति और उसके साथ ही लोक-विस्मृति का अनुभव कर सकता है—उसका आज की हिन्दी कविता मे भी थोड़ा सा परिचय 'प्रसाद', 'नवीन' तथा अन्य सफल छायावादी कवियों की रचनाओं मे मिल सकता है—

ले चल मुझे भुलावा देकर, मेरे नाविक धीरे धीरे।'
—प्रसाद

प्रसाद अपने को भूल जाना चाहते हैं। नवीन भी विस्मृति को रानी कहते हैं और उसी की मधुर शीतल क्रोड मे अपने को छिपा देना चाहते हैं। वे कहते हैं :—

आ जा रानी विस्मृति आ जा।
मेरे इन मचले स्मरणोंको आकर आज सुला जा।
आजा रानी विस्मृति आ जा॥

निरी पार्थिव-लौकिकता के पाश मे जकड़ा व्यक्ति उदात्त मन के सूक्ष्म और कोमलतम संकेतों को न समझ कर यदि उपर्युक्त उद्गारों

को पलायनवाद की संज्ञा दे बैठता है तो यह दोष कवि का नहीं—उस नासमझ का हो सकता है।

छायावाद के कवि ने अदृश्य को संकेत कर अपने राग-विरागो का गान गाया है। महादेवी का 'तम सिन्धु किसी के अरुण बाण के चुभते ही जाग कर हिलोरें लेने लगता है और विहंगो के मधुर राग उसमें बुद-बुद से बह जाते है।' नवीन को भी किसी सूनी दिशा से एक स्वर सुनाई पड़ता है :—

एक सूनी सी दिशा से, सुन पड़ा कुछ ललित मृदु स्वर।
थी किसी की कंठध्वनि, वह था किसी का गान मनहर।
कण्ठ स्वर के सङ्ग ही कुछ भीड़मय झंकार आई।
गान गंगा में मुदित, मन वीणयमुना धार आई।
कुछ सुपरिचित सा लगा, वह कंठ गायन भारवाही।
थी किसी कर की सुपरिचित, अंगुलियों से वीण थर थर।
सुन पड़ा कुछ हिय हरण स्वर॥
मुड़ गयी ग्रीवा उधर को, खिच गये लोचन विचारे।
किन्तु उस सूनी दिशा को देख हारे, दृग हमारे।
विफल अन्वेषण उदधि में, तैर उट्ठे नयन तारे।
शून्य में दृग किरन बिखरी, झर उठे अरमान झरझर।
सुन पड़ा जब हिय हरण स्वर॥

कवि नवीन का छायावादी रूप हमने देखा। 'आधुनिक हिन्दी काव्य' में नवीन के सम्बन्ध में लिखते हुये डा० धीरेन्द्र वर्मा व डा० रामकुमार वर्मा ने कहा है—'भाव विन्यास में नवीन जी आधुनिक छायावादी कवियों से किसी भाँति भी हीन नहीं हैं।' नवीनजीके काव्य ग्रन्थ 'रश्मि रेखा' के प्रारम्भ में 'गीत काव्य और बालकृष्ण शर्मा' शीर्षक आलोचनात्मक उपोद्घात मे पं० सद्गुरुशरण अवस्थी ने कहा है—'उनमे अभिव्यञ्जन का कैतव भी नहीं है, उनमें कथन की सुन्दरता, सम्वेदनात्मक ही है। परन्तु वे छायावाद से दूर ही हैं।'

उपर्युक्त उद्धरणों में ध्वनि स्पष्ट है कि उनके लेखक 'नवीन' को शायद इस युग के प्रचलित छायावादी काव्य का पोषक नहीं मानना चाहते, किन्तु पूर्व उद्धृत छायावाद विषयक सर्व स्वीकृत मतों के अनुसार हमें कहने में संकोच न होना चाहिये कि 'नवीन' काव्य की इस धारा के भी उतने ही समर्थ कवि हैं जितना कि कोई और हो सकता है।

वस्तुत: नवीन जी की कविताओं में आध्यात्मिक रहस्यवाद का पुट अधिक है। यदि डा० रामकुमार वर्मा की छायावाद की परिभाषा 'आत्मा व परमात्मा का गुप्त वाग्विलास रहस्यवाद है और यही छायावाद' ठीक है तो दार्शनिक रहस्यवाद की भावनाओं से भरे हुये नवीन भी छायवादी कवि हैं। अब हम नवीन के रहस्यवादी स्वरूप पर विचार करेंगे।

रहस्यवाद—

दृश्य जगत पर विचार करते करते मनुष्य उसके कारण रूप अदृश्य पर जा पहुँचा। अपनी चेतन कल्पना शक्ति को अपने तक ही सीमित न कर उसने उसका सम्बन्ध अनन्त शक्ति से जोड़ दिया। जीवन की सीमा असीम आलोक मे समाहित हो जाने के लिये ललक उठी। अपनी अपूर्णता को पूर्ण ब्रह्म का अंश समझ कर क्षणिक एवं नश्वर पदार्थों में हम अविनाशी और चिर शाश्वत की सत्ता खोजने लगे। उस सत्ता के साथ हमने अपने मधुर सम्बन्ध स्थापित किये। लौकिक सम्बन्धो मे दाम्पत्य भाव का सबसे मधुर रूप है। ईश्वर को हमने आदि पुरुष माना और अपनी आत्मा को स्त्री मानकर हम मिलन-विरह के गीत गा उठे। उस परम सत्ता का आभास पाकर हम 'मनुज देही' उसके आलिंगन के बद्ध पाश में जाने के लिये तडप उठे, एवं उसी के वियोग मे हमारी आत्मा की आँखें आठ आठ आँसू रो उठीं। इस रुदन को हमने संज्ञा दी और हिन्दी कविता मे यही रहस्यवाद कहलाया।

रहस्यवाद की इस व्याख्या तक हम अचानक ही नहीं पहुँच गये। प्रारम्भ मे भी दार्शनिकों ने ब्रह्म और जीव का समन्वय किया है।

जिसके साक्षी उपनिषद हैं। इसी अवस्था को एक कठिन तपस्या के पश्चात् साधकों ने अद्वैत की अवस्था कहा। चिन्तन पद्धति के अतिरिक्त भावनाओं के सहारे कवियों ने भी आत्मा और परमात्मा का मिलन देखा। ब्रह्म को हमने प्रिय बनाया और जीव को नारी; इस प्रकार ब्रह्म और जीव के बीच का मिलन-विरह एवं इसकी अभिव्यक्ति रहस्यवाद कहलाई।

रहस्यवाद के सम्बन्ध में विभिन्न मत प्रचलित है। आचार्य शुक्ल कहते है 'चिन्तन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है भाव के क्षेत्र मे वही रहस्यवाद है।'

डा० रामकुमार वर्मा का मत है—'रहस्यवाद जीवात्मा की उस अंतर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य व अलौकिक शक्ति से अपना शान्त व निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है। और यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनो मे अभिन्नता हो जाती है।'

महादेवी वर्मा के अनुसार 'रहस्यानुभूति मे बुद्धि का ज्ञेय ही हृदय का प्रेम हो जाता है।'

'जब प्रकृति की अनेकरूपता में, परिवर्त्तनशील विभिन्नताओं में कवि ने एक ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर किसी असीम चेतन और दूसरा ससीम हृदय में समाया हुआ था, तब प्रकृति का एक एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा, परन्तु इस सम्बन्ध मे मानव हृदय की सारी प्यास न बुझ न सकी। क्योंकि मानवीय सम्बन्धों मे अनुणाजनित आत्मविसर्जन का भाव जब तक नहीं घुल जाता तब तक वे सरस नहीं हो हो पाते। इसी से अनेकरूपता के कारण ब्रह्म पर एक मधुरतम व्यक्तित्व आरोपण कर उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना इस काव्य का : छायावादी : दूसरा सोपान नाम दिया गया है।'

सब परिभाषाओं के आलोकमें एक ही तत्व दिखाई देता है और वह है आत्मा का परमात्मा के प्रति आत्मनिवेदन की भावना और इसी को हम रहस्यवाद कहते है।

रहस्य की भावना आदि मानव-समुदाय के अन्तःकरण में-अवतरित हुई थी। प्रकृति के नाना प्रकार के क्रियाकलाप रहस्यवादी प्रतीत हुये और प्राचीनकाल मे सम्भवतः इसी आधार पर लोगों ने एक अलौकिक सत्ता की कल्पना की। आगे चलकर इस सत्ता का अनुसन्धान हुआ और इसकी वंदना की जाने लगी। सारे वाह्य प्रपंचों को मिथ्या मान कर इसी सत्ता को शाश्वत माना गया और उसे ही अज, अखंड, अविनाशी, अनन्त और पूर्ण कहा गया।

उपनिषदों मे आत्मा और परमात्मा के ऐक्य के अनेक सूत्र मिलते है। आगे चल कर यही रहस्यवादी कवियों के लिये प्रेरक सिद्ध हुए। उपनिषदो के पहले भी यह भावना मिलती है :—

क्व प्रेप्सन् दीप्यत ऊर्ध्वो अग्निः, क्व
प्रेप्सन् पर्वत भातरिश्वा
यत्र प्रेप्सन्तीरभि अन्तया वृतः
स्कम्भंतं ब्रूह कतम स्विदेव सः

'यह सूर्य्य किसकी अभिलाषा मे दीप्तमान है, यह पवन कहाँ पहुँचने की इच्छा से निरन्तर बहता है। ये सब कहाँ पहुँचने के लिये चले जा रहे है, उस आश्रम को बताओ, वह कौन सा पदार्थ है।'

प्रसाद जी के अनुसार रहस्यवादियों में आनन्दवादियों की एक अति प्राचीन परम्परा है। 'आनन्दवाद के प्रतिनिधि थे इन्द्र और विवेकवाद के वरुण। आगे मगध के अनात्मवादी आर्य जैन व बुद्ध के रूप मे प्रकट हुये। इधर आगमो मे आनन्दवादी परम्परा प्रवाहित होती रही, जो तान्त्रिको मे कहीं प्रकाश और कहीं मलिनता पाती हुई प्रगति करती गयी, दूसरी ओर विवेकवादी व दुःखवादी दर्शन पौराणिकता को लेकर बढते गये। कृष्ण मे दुःखवाद व आनन्दवाद का समन्वय भी दिखाई पडा। पर भक्त सम्प्रदाय प्रायः संसार को दुःखमय मानकर वैराग्य का ही उपदेश देते रहे। उसमे द्वैत भावना और समरसता का अभाव ही रहा। शंकर की

प्रतिक्रिया के आधार पर वैष्णव दर्शन भी विवेकवादी रहे। अतः भक्तों के रहस्यवाद में भी दुःख ही प्रधान रहा। निर्गुण स्कूल में भी विरह व दुःख प्रधान रहा। किन्तु सिद्धों की रहस्य परम्परा में तुनक गिरि व रसाल गिरि लावनियो में शुद्ध रहस्यवाद की धारा वहाते रहे।" (प्रसाद)

प्रसाद जीने यह भी कहा—'आज साहित्य मे विश्व सुन्दरी प्रकृति में चेतना का आरोप संस्कृत वाङ्मय में प्रचुरता से प्राप्त होता है। यह प्रकृति या शक्ति का रहस्यवाद सौन्दर्य लहरी के 'शरीरं त्वं शम्भो' का अनुकरण मात्र है। वर्त्तमान हिन्दी कविता का रहस्यवाद स्वाभाविक रूप से विकसित हो कर आया है।

इस धारा के आधुनिक मान्य पोषक प्रसाद भी कहते हैं कि भारतवर्ष में रहस्य चिन्तन की परम्परा नवीन नहीं है। यह शायद ठीक है कि इस नाम विशेषको धारण किये हुये किसी प्राचीन काव्य-परम्परा के दर्शन नहीं होते, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि प्राचीन संस्कृत काव्य में कवियों ने रहस्य विवेचन न किया हो, लेकिन समय की मांग थी और किसी विदेशी दर्शन का सहारा न ढूँढ़कर प्रसाद को प्रेरणा शैवागम तथा अन्य भारतीय दर्शन-स्रोतों से प्राप्त हुई और उनका आनन्दवाद आसूँ और कामायनी के रहस्य काव्य द्वारा हमें मिला।

आज के रहस्यवाद की विभिन्न श्रेणियाँ हैं। इनमे जिज्ञासा प्रेम और भक्ति प्रधान है। निराला, 'कौन तम के पार रे कह'—कहकर उस अनन्त शक्ति का परिचय पूछते हैं। पन्त भी जानने के लिये उत्सुक हैं कि 'नक्षत्रों से उनको मौन सन्देशा कौन भेजता है' तथा महादेवी भी लालायित हैं यह जानने के लिये कि :—

'सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे,
नींद के उच्छ्वास सा वह कौन है।'

परन्तु यह जिज्ञासा नवीन में सम्भवतः कुछ अधिक स्पष्ट है।

नवीन को थोडा आभास मिल चुका है और अधीर होकर वे उस चिर-अपरिचित को अधिक पहचानना चाहते हैं :—

अब कहाँ जाऊँ पाऊँ तुम्हें मैं
कुछ कहो तो प्राण मेरे।
किस सघन पट में दुरे हो,
ओ चिरन्तन ध्यान मेरे।

रहस्यवादी कवि इस स्थिति के आगे जाना चाहता है। वह अपनी जिज्ञासा शान्त करना चाहता है, उसकी आत्मा एक रमण भूमि मे पदार्पण करती है। उसे अपने प्रिय के दर्शन होते से हैं और वह अपने प्रिय के मिलन और वियोग के गीत गाता हुआ उन्हीं मे आत्म-विभोर होकर गुनगुनाने लगता है। नवीनजी को अपने प्रियतमका आभास मिल रहा है :—

गमक उठा है स्मृति मे,
प्रियतम तव अंगराग।
नासा में लहर रहा,
वह तव मादक पराग।
भेजी है क्या तुमने,
यह रस-मय निज सुगन्ध।
अनिल लहर लाई है,
परिरम्भण गन्ध मन्द।
मम गत आया सम्मुख,
तोड कठिन करल वन्ध।
जाग उठा है फिर से,
मेरा विगतानुराग।
प्रियतम तव अंग राग॥

आभास पा चुकने के बाद नवीन के प्रियतम मानो उनके सामने आ जाते हैं और अपने प्रियतम की अभ्यर्थना मे नवीन जी तन्मय होकर गा उठते हैं :—

मेरे सन्ध्या नभ के,
तुम ही तो हो कुंकुम।
मेरे जीवन मग की,
ज्योति-किरण भी हो तुम।
मम अपूर्ण चाहों के,
तुम ही हो इच्छा द्रुम।
तुम ही मे केन्द्रित है,
मेरी यह हृदय लगन।
तुम मम मन्दार सुमन॥

इसके पश्चात नवीन जी का अन्तःकरण अपने प्रियतम के रंग मे ही रॅग उठता है और वे पूर्ण आत्म-समर्पण कर देते हैं:—

प्रिय मेरे हिय मे, तुम आये चोरी चोरी।
औ ले ली निज कर मे, मेरी जीवन डोरी।
रंजित है तव रंग में, अब मम चादर कोरी।
मुझको अब कहते हैं, सभी तुम्हारा चारण।
ओ मम मन्दार सुमन॥

और इसके बाद आतमा का उस अनन्त शक्ति से पूर्ण मिलन सा होता है, उसमे समरसता और एकाकार की भावना आती देख पड़ती है। इस दशा मे पहुँच कर मनुष्य की स्थिति वर्णनातीत हो जाती है।

प्रिय के स्पर्श की वह सिहरन, वाणी प्रस्तुत करने मे असमर्थ हो जाती है। कबीर ने तो उसे 'मैं जो था सोई भया, अब कछु कहा न जाय'—कहा है। वस्तुत. वह अनुभव क्या कहा जा भी सकता है? नवीन जी उस अवस्था का एक संकेत भर देते हैं। वे प्रेम की उस सीमा तक पहुॅच गये हैं और इस मिलन-क्षण के लिये आतुर से हो रहे हैं :—

अब कैसी लोक लाज,
अब क्या संकोच सजन।

क्यों न आज वन्ध तोड,
वहे मुक्त स्नेह व्यजन।

इसी एकात्मता का संकेत महादेवी जी ने भी किया है :

'वीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।'

प्रसाद जी इसके सम्वन्ध मे कहते हैं :—

वल्लरियाँ नृत्य निरत थीं,
विखरी सुगन्धि की लहरें।
फिर वेणु रन्ध्र से उठ कर,
मूर्छना कहाँ अव ठहरे।
क्षण भर मे सव परिवर्तित,
अणु अणु थे विश्व कमल के।
पिंगल पराग से मचले,
आनन्द सुधा रस छलके।
समरस थे जड या चेतन,
सुन्दर साकार वना था।
चेतनता एक विलसती,
आनन्द अखण्ड घना था।

यहाँ द्वैत की भावना का जैसे लोप हो गया है। 'तत्त्वमसि' की यही अवस्था है। व्रह्म और जीव का यह एकीकरण, रहस्य-की अंतिम स्थिति है। इस अवस्थामे अलौकिक आनन्दकी सृष्टि होती है। नवीन अपने प्रियतम से मिल कर अत्यन्त पुलकित से जान पडते हैं—

मृदुल ज्योति किरण सदृश,
भेद स्वप्न अन्धकार।
भले पधारे हँसते,
ओ मम जीवनाधार।
धन्य हुआ मेरा यह,
निद्रा, आलस विकार।

धन्य हुये तुम्हें निरख,
मम मीलित युगल नयन।
पुलकित मम रोम रोम,
मधुर क्वगन-मय मम तन।

× × ×

मुझ चिर याचक को यों,
आ औचक दिया दान।
मैं निद्रित, त्वरित बना,
चिर जागृत के समान।
त्वम-मय हो गये, सजन,
मेरे ये विकल प्राण।
अब तक भी अधरों पर,
हैं वे तव मधु रस कण।
पुलकित मम रोम रोम,
मधुर क्वगन मय मम तन।

वस्तुतः छायावाद और रहस्यवाद में क्या अन्तर है: यह भी थोड़ा समझ लेना आवश्यक हो जाता है। आजके छायावादी कवि रहस्यवादी भी हैं। मोटे तौर पर यह अन्तर कहा जा सकता है कि छायावादी कवि प्रकृति से अपना सम्बन्ध जोड़ता है और रहस्य-वादी परब्रह्म के साथ तादात्म्य स्थापित करता है। छायावादी, प्रकृति में परम सत्ता का दर्शन मात्र करता है, किन्तु रहस्यवादी आत्मा और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं देखता। वह इस असीम शक्ति में अपनी सीमा का पर्यवसान कर डालता है। छायावादी काव्य की विशेषता प्रकृति और मानव के मिलन के सम्बन्ध में है।

छायावाद का कवि प्रकृति में अपनी भावनाओं का आरोप करता है। 'सजल मेघ खंड, मादक बयार, तृण लता उसके प्रिय संगी हो जाते हैं।' उनमें उसे अपने प्राणों की परछाइं दिखाई देती

है। छायावादी कवि प्रकृति मे अपने हृदय की धड़कनें सुनता है।' 'मानव हृदय की यह भावुकता' और जड़ प्रकृति की सुकुमारता मिल कर छायावाद में बोल उठती है। रात कवि की रानी हो जाती है और सन्ध्या उसकी सुकुमार प्रिया।' उसे 'दूरस्थ तीर दो बाहों के समान धारा के कृश कोमल शरीर का आलिंगन करने के लिये आतुर दिखाई देता है एवं रजनी घूँघट उठा कर मुसकाती सी ठिठकती हुई आती प्रतीत होती है।' कवि अपनी समवेदना से प्रकृति मे रंग भरा करता है। 'ओस की बूँदें, रजनी की आँखों के मोती हो जाती हैं।' परन्तु रहस्यवादी कवि केवल इस आभास मात्र से संतुष्ट नहीं होता। वह केवल प्रकृति से ही नहीं, अपितु पुरुष से भी समान्वित सम्बन्ध जोड़ता है। वह वियोग में रोता है एवं मिलन में असीम आनन्द का अनुभव करता है।

हम देखते हैं कि छायावाद वस्तुतः रहस्यवाद का सोपान हो सकता है। छायावाद में सौन्दर्य की अनुभूति है, प्रकृति मे शाश्वत चेतना की छाया देखने की आदत है, किन्तु रहस्यवाद उसमे अपने को मिला देना चाहता है। उसके विरह मे आतुर होकर वह निवेदन करता है और उसे पाकर वह प्रसन्न होकर कह उठता है :

'मिल गये प्रियतम हमारे मिल गये'

(प्रसाद)

प्रसाद की भाति नवीन का भी रोम-रोम अपने प्रियतम को पाकर 'स्वनित' है।

महसा मिल गये आज,
मेरे सब तार तार।
गूँजी झंकार मधुर,
उँमगी मधुगान धार।
आज पूर्ण हुआ प्राण,
जीवन का स्वर सिंगार।

आरोहण, अवरोहण, श्रुति, लय,
अब ध्वनित आज।
रोम रोम स्वनित आज।

नवीन का रहस्यवाद कई अंगों को साथ लिये हुये है। कबीर-दादू का ज्ञानात्मक रहस्यवाद, सिद्धो, तान्त्रिकों का साधनात्मक रहस्यवाद एवं मीरा, प्रसाद, निराला, महादेवी का प्रणय मूलक-रहस्यवाद मानो एक साथ नवीन मे दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त कुछ चिन्तन-प्रधान रहस्यवादी कवितायें भी नवीन की, देखने को मिलती हैं।

कबीर के 'घूँघट के पट खोलरी, तोहे पिया मिलेंगे' की भांति नवीन भी अपनी आत्मा को नेक सलाह देते हैं :—

चल उतार अंग वस्तर आली,
तू क्षण भर में होगी पियमय।
अब कैसा दुराव साजन से,
पूर्ण हुआ तेरा क्रय-विक्रय।
नत लोचने! हृदय की नीवी खोल
नयन में सहज भाव भर।
दिखला दे अपने प्रीतम को।
जनम जनम का अपना निश्चय।
यह पल्ला, यह पट, यह अंचल
भार भूत हो जायेंगे सब।
अरी! तनिक आने तो दे तू!
उनकी मादक मुरली की लय।

सिद्धों की भाति अखिल ब्रह्माड के कण-कण में नवीन अनन्त शक्ति के दर्शन कर रहे हैं :—

क्या जगाई है तुम्हीं ने,
सजन! झिलमिल दीपमाला।

इस महद् ब्रह्मांड भर मे,
खूब फैला है उजाला ।
परम अणु अणु मे रमे हो,
दीप्ति की सुषमा जगाते ।
ओ मुदित आलोक दानी,
फिर रहे तुम लौ लगाते ।
भूमि मण्डल औ खमण्डल,
थिरकते हैं जगमगाते ।

महादेवी जी 'नीर भरी, वह दुःख की बदली हैं जो कल उमड़ी थी और आज मिट चली हैं ।' नवीन भी उस 'भरी झारी की भांति हैं जो कल प्रिय चरणों मे ललक कर ढुलक पड़ेगी ।'

प्रिय, मैं आज भरी झारी सी,
ललक ढुलुँगी श्री चरणों मे ।
निज तन मन वारी सी,
साजन ! आज भरी झारी सी ।

नवीन के रहस्यवादी एवं छायावादी काव्य में कला है, जीवन है एवं एक सात्विक आवेग भी है ।

"रहस्यान्वेषण को यदि दर्शन की पहली सीढ़ी कहा जाय तो रहस्यानुभूति को ही दर्शनानुभूति कहना पड़ेगा । भले ही कवि खरा दार्शिनिक न हो, कट्टर साधक न हो लेकिन अपनी साधना की तन्मयता में 'रहस्य' और दर्शन के पथ पर पग बढाते ही वह भी दार्शनिक और साधक की भाँति ही सत्यान्वेषी तो हो ही जाता है । दोनों की आनन्दानुभूति भी एक दूसरे से बहुत भिन्न नहीं होती— भले ही उनके अपने अपने रहस्य भिन्न हों । जहाँ योगी अपने इष्ट के दर्शन पाते ही अपनी आत्मा का अर्घ्य उसे अर्पित करता है—कवि भी उसी प्रकार अपनी आत्मा का अर्घ्य चढाता है, लेकिन हृदय की 'कोमलतम भावनाओं की कुसुमित कलियों के सहित ।'

(आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल)

कवि 'नवीन' की कृतियोंमें यह प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। 'साँई मेरे साजि दई एक डोली' कह कर कबीर 'नैहर' जाने में बहुत प्रसन्नता का अनुभव नहीं करते। नवीन को भी हम कबीर की ही चिन्तन नीहारिका में डुबकी लगाते देखते हैं :—

डोला लिये चलो तुम झट पट
छोड़ो अटपट चाल रे
सजन भवन पहुँचा दो हमको,
मन का हाल बेहाल रे
बरखा ऋतु मे सब सहेलियाँ
मैंके पहुँची आय रे
बाबुल घर से आज चली हम,
पिय घर लाज बिहाय रे।
उनके बिन बरसाती रातें,
कैसे कटें अचूक रे।
पिय की बाँह उसीस न हो,
तो मिटे न मन की हूक रे।
डोले वालो, बढ़े चलो तुम,
आया सन्ध्या काल रे।
सजन भवन पहुँचा दो हमको,
छोड़ो अटपट चाल रे।

सध्या काल सम्भवतः चिर-मिलन-बेला की उत्सुकता का संकेत दे रहा है। 'सजन भवन', 'नवीन' इसलिये जाना चाहते हैं कि 'साजन के नव नेह सलिल में है अद्वैत बिहार रे।' 'नवीन के साजन असीम शक्ति सम्पन्न हैं, उनका कहीं भी ओर छोर नहीं है :—

जब झंकारें अमित झिल्लियाँ,
हो दादुर का शोर रे।
तब हम हुलस कहेंगी उनसे,
तुम्हारा ओर न छोर रे।

कबीर ने एक 'अविनाशी पुरुष' का वरण किया था—'कहै कबीर हम व्याहि चले हैं पुरुष एक अविनासी' और उस 'राजा राम भरतार को पा कर वे मंगल गान का विधान भी प्रस्तुत करते हैं।' नवीन भी 'हृदय हृदय से प्राण प्राण से आज मिलें भरपूर रे'—कह कर'पिय मय तिय' और 'तिय मय पिय' हो जाने की कामना करते हैं और इसी में उन्हें परमानन्द का अनुभव होता है।

इस अलौकिक बिहार के अतिरिक्त जीवन की गहन दार्शनिकता पर भी विचार करते हुये हम नवीन को पाते हैं:—

प्रिय जीवन नद अपार,
विशद् पाट, तीव्र धार,
गहर भँवर, दूर पार,
प्रिय जीवन नद अपार।

इस 'अपार जीवन नद' को पार करने के लिये अनेक कठिनाइयाँ हैं। प्रबल झंझावात् के थपेड़ों से आहत, नाना प्रकार के दुःखों एवं आपदाओं के चकोह मे पड़ा हुआ, 'कच्चे घट' के से आस्तित्व वाला मनुष्य विवश है। उसे इसको पार करना अपनी ही शक्ति के सहारे अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है। नवीन जी को 'जीवन की तीव्र धार दुस्तर' लग रही है:—

किस विधि नद तरूँ तरित, पहुँचूँ उस पार सजन।
कच्चा घट जल संकट लहर भँवर तीव्र व्यजन।
भय है गल जायेगा यह मम तरणोपकरण।
दुस्तर सी लगती है जीवन की तीव्र धार।
प्रिय जीवन नद अपार।

अतः इस कच्ची माटी को पक्की करने के लिये कवि उसी कुम्भकार स्रष्टा से अग्नि पुँज मांगता है।

पहले इसके कि करो सजन वेणु वादन तुम।
पहले इसके कि करो सुर का आराधन तुम।
भेज अग्नि पुँज करो पक्का रज भाजन तुम।

ताकि छूट जाये यह तरण मरण भीति रार।
प्रिय जीवन नद अपार।

स्पष्ट है कि कवि आवागमन से मुक्ति चाहता है। अनन्त के श्री चरणों में पूर्ण आत्म समर्पण कर मोक्ष के परम पद की याचना कर रहा है। अकलुष चिन्तन के क्षणों में हुई अनुभुतियों के स्वर नवीन जी की कविता में गूँज रहे हैं। उनकी कविताओं का एक बहुत बड़ा अंश दार्शनिक कविता की कोटि में रखा जा सकता है।

रहस्य की राह पर चलते चलते नवीन को अपने प्रीतम की याद आती है और उनके ललित चरणों को हृदयस्थ कर लेने के लिये वे अधीर हो उठते हैं।

चलित चरणों की जगह
अब कब मिलेंगे ध्रुव चरण वे
युग युगान्तर से समाश्रय
वे अडिग अशरण शरण वे।

इसी प्रकार उनका प्राण पंछी प्राणों में मधुर पीड़ा का भार लिये अथकित अवरूद्ध चाल से उड़ता हुआ प्रीतम के देश की ओर चला जा रहा है—अपने दिव्य मार्ग पर—अनिर्वचनीय आनन्द में विभोर, जीवन की अमरता को वरदान लेने :—

दूर देश दूर नगर
अद्भुत अज्ञात डगर
किन्तु प्राण पंछी की
अथकित अवरूद्ध चाल
फैलाये पंख जाल
श्वास क्षुब्ध, चंचुरुद्ध
किन्तु लगी लगन शुद्ध
डैनों की सन् सन् में
जागरूकता विशाल
उड़ना है उड़ना है
प्रीतम दिशि मुड़ना है
योग नहीं केवल हो



परिशिष्ट

सन्तू

अतीत भारत के अतीत गौरव-चिह्नों को अपने सुविशाल वक्ष-स्थल पर धारण कर उज्जयिनी नगरी आज भी अपना मस्तक ऊपर किये खड़ी है। सुभग सलिला भगवती सिप्रा भूतनाथ भगवान महाकाल के चरणों को स्पर्श करती हुई अनन्त में मिलने के लिये चली जा रही है। उसका यह क्रम इसी प्रकार अव्याहत चला जाता है। संसार चक्र भी भविष्यत् को वर्त्तमान बनाता तथा वर्त्तमान को अतीत के गर्भ में डालता हुआ अबाधित चला जाता है। इसी से कहना पड़ता है कि -"दुरतिक्रमणीयो हि कार्य्यधारापात वन्धः।" सिप्रे। उज्जयिनी की चिर-संगिनी सिप्रे। तुम्हारी इस तरल और उत्ताल तरंगों ने अनेक दु खित आत्माओं को शान्ति दी होगी। तुम्हारे इस कर्ण मधुर कल-कल-निनाद ने अनेक उत्साह-शून्य-आत्माओं मे कार्यकारिणी शक्ति का संचार किया होगा। तुम्हारे इस वृक्षाच्छादित निर्जन कूल पर अनेक संसार-विरत महानुभावों ने बैठकर उस अनन्त का साक्षात्कार किया होगा। सरल-तरले सिप्रे। ग्रीष्म ऋतु मे किसी न किसी दिन महाराज भर्तृहरि अवश्य तुम्हारे तट पर आये होंगे। सान्ध्य-प्रकाश का दृश्य भी उन्होंने वहीं से देखा होगा, और, फिर देखा होगा चन्द्रालोकित नैश गगन। मन्द मन्द वायु के झकोरों ने जब उनके हृदय मे नाना प्रकार के भाव जागृत कर दिये होंगे तब क्या उनके श्री मुख से—

"मन्दो मरुत् सुमनसः शुचि हर्म्यपृष्ठं
ग्रीष्मे मदश्च विवर्धयन्ति"—

ये उद्‌गार सहसा न निकल पडे होंगे? इन्हें अवश्य ही तुमने सुना होगा। क्या तब तुम्हारे आनन्द की कुछ भी सीमा रही

होगी ? भगवति सिप्रे ! एक दिन काली निशा से तुम्हारे दुकुल व्याप्त हुए होंगे ! उस दिन उन्हीं भर्तृहरि के हृदयाकाश मे वैराग्य का सूर्य उदित हुआ होगा। क्या तुमने उनको—"धिक् ताञ्च तञ्च मदनञ्च इमाञ्च माञ्च"—कहते सुना था ? माँ। क्या कह सकती हो कि उन्होने इन्ही तट द्वय पर कितनी रात्रियां निशीथ-चिन्ता में व्यतीत की होंगी ? जाने दो, माँ। कदाचित् यह अतीत गाथा तुमको चर्वित-चर्वण प्रतीत हो।

एक एक करके दस बज गये। देखते देखते सब दीपक बुझ गये। कोलाहल शान्त हो गया। उज्जयिनी प्रशान्त की प्रतिमूर्ति बन गई। उस स्तब्ध नगरी के भव्य मस्तक पर भगवान रजनीनाथ उदित हो गये। क्या संकुचित गलियों मे और क्या राज मार्ग पर, सब कहीं गृहावलियां चुपचाप खडी थीं। सब अपनी सुख-शय्या पर सो रहे थे। पर, दूर, कोई अपने कलकण्ठ कण्ठ से गा रहा था—

"सो सुख निंदिया प्यारे ललन ।"

एक कमरे मे दीपक जल रहा था। एक शुभ्र पलंग पर एक सप्त-दशवर्षीय रुग्ण युवक लेटा हुआ था। उसका मुख मुरझाया हुआ तथा शरीर अत्यधिक कृश था। उसकी विशाल आंखें अन्दर धंस गयी थीं। सिरहाने एक और युवक बैठा था। रोगी का सिर युवक की गोद मे था। रोगी ने कहा—"दादा, पानी ! गला सूखा जाता है। पानी ! देखते क्या हो ?"

युवक ने बडे ही मीठे और करुण-स्वर मे कहा—"भैया, सन्तू पहले यह दवा पीलो, फिर तुम्हें जल देंगे।"

सन्तू बोला—"विमल दादा, अब मैं दवा अवा न लूँगा। पानी।" विमल ने कहा—"क्यों भैया, ऐसा हठ क्यों करते हो ?"

सन्तू शान्ति से कहने लगा—विमल दादा, अब तो "औषधं जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः।"

विमल कुछ न बोला। सन्तू ने आंख मूंद ली। फिर आंख खोल-कर विमल की ओर बड़ी करुण दृष्टि से देखने लगा। विमल को यह

दृष्टिपात बड़ा हृदय-भेदक जान पड़ा। उसने बड़ी कठिनता से अपने आँसुओं को रोका।

सन्तू फिर कहने लगा—"दादा। आप दुराशा की आस किये बैठे हैं। मेरी यह बीमारी साधारण नहीं। आप .... अरे। आप रोते हैं?"

विमल बालकों के सदृश रोने लगा। कमला पास ही खड़ी थी।

सन्तू बोला—"भाभी, देख तो भैया को न जाने क्या हो गया है?"

कमला ने इसके पहले कभी विमल की आँखों मे आँसू न देखे थे। आज उसने देखा कि विमल के दृढ़ हृदय ने धैर्य का दिवाला निकाल दिया।

वह विमल से बोली—"यह क्या? यदि आप उनके सामने यों बच्चों जैसे आँसू बहावेंगे तो . ।"

विमल बोला—"नहीं कमला, रोता कहाँ हूँ।"

विमल ने अपने आँसू पोंछ डाले।

सन्तू ने कहा—"अच्छा लाओ, यदि मेरे दवा न पीने से आपको कुछ कष्ट होता हो तो पी लूँ।"

विमल ने दवा की कटोरी उसके ओठ से लगा दी। वह दवा पी गया। फिर वह बोला—"अब तो पानी दो।"

विमल ने कमला को गरम किया हुआ पानी लाने का इशारा किया। कमला ने विमल के हाथ मे एक गिलास दे दिया। उसने सन्तू से कहा—'लो।' सन्तू ने एक घूँट पीकर मुँह फेर लिया—

"अरे! भाई यह तो गरम है। ठण्डा लाओ।"

कमला बोली—"लाला, आप समझदार होकर ऐसी बातें करते हैं। अभी यही पी लो।"

विमल बोला—"भैया, ठंडा जल सुबह देंगे।"

यह सुनकर सन्तू मानो, किसी आन्तरिक भाव से प्रेरित हो कहने लगा—"कब दादा? सुबह? पर किसे?"

यह कहकर वह चुप हो गया। उसके चेहरे पर थोड़ी सी मुसकुराहट दिखाई दी। इन शब्दों को सुनकर और उस भावभरी मुसकान को देखकर विमल सिहर उठा। सन्तू! क्या प्रातः काल के पूर्व ही तुम किसी महान अज्ञेय पथ के पथिक हो जावगे? क्या सचमुच तुम इस मुसकुराट से यह जता रहे हो कि अभागे! तूने तो शीतोदक से मेरी तृपा तक न वुझाई!

(२)

"टन्-टन्, टन्"—विमल ने चौंक कर घडी की ओर देखा। तीन बजाकर मिनट की सुई आगे चली गई। सन्तू की आँख कुछ लग गई थी। विमल कमरे के बाहर आया। उसने देखा कि निद्रा देवी सारे जगत पर अपना मोह जाल फैलाये हुए है। शीतल-मन्द समीरण वह रहा है। माता प्रकृति प्राणि मात्रको थपकियाँ दे देकर सुला रही है। चन्द्रदेवने सहचरी रजनीको अपनी कौमुदी का स्वच्छ पट पहना दिया है। वे अपने करों से गोपाल-मन्दिर तथा महाकाल मन्दिर के उच्च शिखरों का स्पर्श करके मानो हँस रहे है। सहचरी यामिनी घुल घुल कर चन्द्र से बातें कर रही है। तारिकायें इस प्रेमालाप को सुन कर खिली पड़ती है। कैसा सुन्दर शान्त समय है। किन्तु उत्तप्त हृदय को शांति कहाँ? कभी-कभी पहरे वाले 'जागते रहना' कह कर चिल्ला उठते हैं। पासवाले इमली के पेड़ पर दिवान्ध देवता कभी-कभी अपनी कर्कश बोली से इस स्तब्धता को भंग कर देते हैं। विमल इधर-उधर शून्य दृष्टि से देखने लगा। याद आता है बहुत दिन नहीं हुए; तव विमल एक रात को इसी तरह आकाश की ओर मुँह किये देख रहा था। उस दिन उसने अपने एक अभिन्न हृदय को खो दिया था। उस दिन उसे सर्व संसार शून्य दिखाई देता था। आज उसका प्राणों से प्यारा भाई मृत्यु-शय्या पर पड़ा हुआ था। उस दिन वह नैराश्य-पूर्ण अन्धकार में भटक रहा था और आज? वह घने अँधेरे मे एक क्षीण ज्योति को देख रहा था। आज वह बड़ी दुविधा में था। उसे उस जीवन-ज्योति के बुझने की बड़ी आशंका

थी। उसने अपने आप से पूछा—"अगर ज्योति बुझ गयी तो ?" ओफ। कैसा भयानक प्रश्न है। इसका उत्तर उसे न मिला। वे दिन रोजे के थे। एक फकीर दूर पर गा उठा—

'चुन चुन मिट्टी महल बनाया, कोई कहे घर मेरा है।
ना घर मेरा ना घर तेरा, चिड़िया रैन बसेरा है॥'

विमल ने इसे सुना या नहीं सो हम नहीं जानते। पीछे से किसी ने उसके कन्धे पर हाथ रख दिया। इस कोमल कर-स्पर्श से विमल चौंक उठा। देखा कि कमला मुँह लटकाये खड़ी है।

विमल ने पूछा—'क्यों कमला ?'

कमला ने धीरे से कहा—'वे जाने क्या बर्रा रहे हैं।"

विमल बिना कुछ कहे वहाँ से चल दिया। कमरे में आकर देखा कि सन्तू नींद मे कुछ बर्रा रहा है। वह झट उसके पास जाकर बैठ गया। सन्तू नींद मे कह रहा था—

' मेरा··का म देश से वा·रह भग व न्"

विमल ने पुकारा—'सन्तू'

सन्तू चौंक उठा।

विमल ने पूछा—'सन्तू क्या बर्राते थे ?'

सन्तू चुप रहा। वह विमल के मुख की ओर देखने लगा। कुछ देर बाद सन्तूको जोर से हिचकियाँ आने लगीं। कमलाने यह देखा। उसने दौड कर नौकर से कहा—'डाक्टर को बुला लाओ।' नौकर आज्ञा पालन करने दौडा।

थोडी देर तक किसी तरह आँखों द्वारा अपने भाव प्रकट करते हुए सन्तू बोला—

'दादा अब मैं चलने पर हूँ। किन्तु एक बात कहता हूँ। आपको मेरे जीवन का कार्य-भार अपने ऊपर लेना होगा।' यह कह कर विमल की ओर देखने लगा। विमल चुप थे।

सन्तू फिर बोला—'मुझे अत्यन्त दुःख है कि इस कार्य को पूर्ण

किये बिना ही जाता हूँ। यदि आप उसे पूर्ण करने का वचन दें तो मैं सुख से प्रयाण कर सकूँ।'

विमल फिर चुप रहा। उसने अपने निर्बल हृदय पर हाथ रखा। वह जोर से धकड़ रहा था। सामने देखा कि छोटे भाई सन्तू का कार्य एक विशाल पर्वत के सदृश है। विमल ने अपने हृदयसे पूछा—

'निर्बल। क्या तुम इतने बड़े अनुष्ठान के साधन में फलीभूत हो सकोगे?'

कुछ उत्तर न मिला। विमल को इस प्रकार मौन देख कर सन्तू उत्तेजित हो उठा।

वह बोला—"विमलदादा! तो क्या मुझको इस प्रकार निराश ही जाना पड़ेगा? अच्छा, यह भी ठीक ही है। यदि इसी प्रकार प्रबल पश्चात्ताप की अग्नि में जलते हुये मैं अपने प्राण विसर्जन कर सकूँ तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं अपने इस कार्य को जन्मान्तर में अवश्य पूर्ण कर सकूँगा। विमल दादा, आप इसका भार अपने ऊपर न लें।"

अब मु''''झे''''जाने दें।

विमल अपने अल्पवयस्क भाई के इस अद्भुत साहस को देखकर प्रारम्भिक उत्साह से उत्तेजित हो उठा।

वह बोला—'भैया सन्तू। तेरा कार्य मैं करूँगा।'

सन्तू लड़खड़ाती जबान से कहने लगे—'नहीं दादा'' प्रणाम—मेरा'''का र्य मेरे साथ भाभी दादा'' देख ना प्र ण। एक हिचकी और बस !!

कमला चीख मारकर गिर पड़ी। चीखें सुन कर डाक्टर बाबू उलटे पैर लौट गये। विमल के नीचे से पृथ्वी खिसक गई! सर्वत्र अन्धकार!

(३)

सन्तू इस संसार में नहीं। उसे गये बहुत दिन हो गये, किन्तु सृष्टि के सर्व कार्य ज्यों के त्यों चल रहे हैं। सूर्योदय होता है, दिन

आता है, रात जाती है। शीतला सिप्रा भी कलकल नाद करती हुई उसी प्रकार अष्ट-प्रहर बहती चली जा रही है। उज्जैन निवासियों के सारे कार्य आनन्द से चल रहे हैं। महाकालेश्वर के मंदिर में 'हरोऽम हर' की ध्वनि अब भी प्रातः सायं उसी प्रकार कर्णगोचर होती है। सन्ध्या के समय आर० एम० रेलवे भी निश्चित रूप से स्टेशन पर आ जाती है। सन्तू के बिना कोई भी कार्य रुका सा दिखाई नहीं देता।

सायंकाल का समय है। अस्ताचल सन्निकटवर्त्ती भगवान अंशुमाली अपने आरक्त करोंसे उज्जयिनी नगरी के उच्च सौध शिखरों को स्पर्श कर रहे हैं। बिमल इस समय म्यूनिसिपल पार्क में एक बेंच पर बैठा है। वह आकाश की ओर देख रहा है। उसने देखा कि आकाश अनन्त है और मैं भी अनन्त के गर्भ में स्थित हूँ। सन्तू की आत्मा भी इसी अनन्त के गर्भ मे स्थित है, फिर मैं सन्तू को क्यों नहीं पाता ? हाँ, अवश्य पाऊँगा। किन्तु कब ? अनन्त के गर्भ मे अनन्त वस्तुयें हैं। सन्तू भी उन अनन्त वस्तुओं मे से एक है। मैं भी एक हूँ। अत मैं इन अनन्त मे से उस एक को कैसे ढूंढ़ सकता हू ? क्या करूँ ? इसके लिये मुझे भी अनन्त होना पड़ेगा। बस। तब सन्तू और मैं एक हो जाऊँगा। फिर सन्तू के ढूंढ़ने की आवश्यकता ही क्या। इतनेमे उसका ध्यान टूट गया। पास ही देखा कि "चना जोर गरम" की आवाज़ लग रही है।

फिर उसने देखा कि सूर्यास्त हो चुका है। कौवे आमने-सामने के दो वृक्षों पर बैठकर कांव-कांव कर रहें हैं। उनकी कांव कांव से सन्तू की एक बात का स्मरण हो आया। वह अपने आप कहने लगा—"सन्तू। ठीक इसी समय, इसी स्थान पर, इन्हीं कौवों के रव को सुनकर तुमने एक दिन मुझसे कहा था कि इधर के कौवे तो उदार दल के (Liberals) है और उधर के अनुदार दल के (Conservatives)। ये इस समय आयरलैंड के स्वराज्य सम्बन्धी प्रश्न को हल कर रहे हैं। बालक। तुम्हारे इस अपरिमित

ज्ञान पर मैं उस रोज मोहित हो गया था। किन्तु वही बात आज मुझे शूल सी क्यों चुभती है।

विमल उठकर घर गया। सिर-दर्द का बहाना करके वह बिना भोजन किये ही पलँग पर पड़ गया। कमला पास बैठकर धीरे-धीरे सिर दबाने लगी। इसी दशा में विमल को नींद आ गई। निद्रा देवी ने भी उसे विचार-तरंगो से मुक्त न किया। वह स्वप्न देखने लगा। मानो वह एक दुर्गम वन मे चला जा रहा है। आकाश मे सघन मेघ आ आकर घिरने लगे। ठंडी हवा खूब जोरो से चलने लगी। देखते देखते आकाश मेघो से व्याप्त हो गया। धीरे धीरे अन्धकार और घना होता गया। अब मूसलाधार वर्षा आरम्भ हो गई। अँधेरा यहाँ तक घना बढ़ा कि हाथ को हाथ न सूझने लगा। इतनेमें बिजली चमकी। उसके प्रकाशमे देखा कि सन्तू उस मूसलाधार पानी में बाल-स्वभाव-जन्य कलोलें कर रहा है। उसने यह भी देखा कि वह खूब ठंढा जल पी रहा है। विमल नींद मे बोल उठा :—

'सन्तू यह क्या ? पानी मे मत खेलो। बीमार हो जावोगे।'

सन्तू ने मुसकराकर कहा "अभागे विमल दादा, तुमने तो ठण्डे जल से मेरी प्यास न बुझाई।"

इसके बाद विमल अपना हृदय मसोस कर आगे बढ़ा। वह एक बार जोर से पुकारने लगा—

'सन्तू तुम कहाँ हो ?, सन्तू तुम कहाँ हो ?'

पर उस झंझा वायु से क्षुब्ध अरण्य में केवल यही प्रतिध्वनि सुनाई पड़ी—'सन्तू तुम कहाँ हो ?'

अब मानो विमल इस जंगल से पार होने की चेष्टा करने लगा। धीरे धीरे बादल फटने लगे। यत्र तत्र तारे चमकने लगे। भगवान शर्वरीनाथ ने अपना सुन्दर मुख फिर दिखाया। अब के विमल ने देखा मानो निर्जन वन मे एक पहाड़ के नीचे दो नदियो का संगम है। वहाँ एक सुन्दर वाटिका है। उस वाटिका मे एक कुटीर है। एक ओर एक नदी कदली कुञ्ज मे क्रीड़ा करती हुई, सुन्दर, शुभ्र स्फटिक

शिलाओं से टकराती हुई, वृक्षों की टहनियों से छेड़-छाड करती हुई, दूसरी नदी मे अपनी वक्र धारा को मिलाती हुई, उसके वक्षस्थल पर विश्राम लेती हुई दृष्टिगोचर होती है। उस शान्ति-कुटीर मे एक युवा संन्यासी बैठा है। विमल ने इस पुष्प वाटिका के भीतर जाना चाहा। इस पर उसके हृद्‌गत भावो को जानकर ही मानों संन्यासी बोला—

"विमल दादा, यह पवित्र स्थान आरम्भ-शूरों के लिये नहीं। अभागे विमल। तुमने केवल आरम्भ-शौर्य के वशीभूत होकर मेरा यह महत्तम अनुष्ठान करने का प्रण किया था। जाओ। अपने दायित्व भार को समझो।"

विमल ने चौंक कर कहा—ओफ। सन्त॥"

विमल की आँख खुल गई। उसने सिरहाने कमला को बैठे देखा। वह उठकर बैठ गया।

सारा शरीर पसीने से तर था। कमला ने मीठे स्वर से पूछा—"क्या है ?"

विमल ने काँपती हुई भर्राई आवाज से कहा—"कमला। यदि हृदय एञ्जिन का बाइलर होता तो भक् से फट जाता॥।"

—नवीन